रावण

चतुर्भुज

चतुर्भुज-साहित्य

नाटक : रावण, सिकन्दर-पोरस, पीरअली, झांसी की रानी, शिवाजी, मुद्राराक्षस, शकुन्तला, पाटलिपुत्र का राजकुमार, बहादुरशाह, नूरजहाँ, अरावली का शेर, कुंवर सिंह, सिराजुद्दौला, मीरकासिम, मोर्चे पर, कंसवध, श्रीकृष्ण, कलिंग-विजय, कृष्णकुमारी, कर्ण, मेघनाद, भगवान बुद्ध, भीष्म-प्रतिज्ञा, बन्द कमरे की आत्मा, कालसर्पिणी, बाबू विरंचीलाल, विजय-तिलक (एकांकी-संग्रह), झेलम के किनारे (एकांकी-संग्रह)।

उपन्यास : समुद्र का पक्षी (ऐतिहासिक), राजदर्शन (ऐतिहासिक)

कहानी-संग्रह : कमरे की छाया, इतिहास बोल उठा

इतिहास : औरंगजेब

अंग्रेजी में : Memoirs of William Tayler of 1857, The Great Historical Dramas, The Rani of Jhansi.

—o—

पत्रकारिता - जगत

(पत्रकारिता के विभिन्न पहलुओं पर आधारित पुस्तक)

लेखक : अशोक प्रियदर्शी और सुनील कुमार सिन्हा

मूल्य—साठ रुपये

—o—

सम्पर्क-सूत्र :

मगध कलाकार प्रकाशन

106, श्रीकृष्ण नगर, पटना-800001 (बिहार)

रावण

(पौराणिक नाटक)

लेखक

चतुर्भुज, एम०ए०, पी-एच०डी०

मगध कलाकार प्रकाशन

106, श्रीकृष्ण नगर, पटना-800001

प्रकाशक :
मगध कलाकार प्रकाशन,
106, श्रीकृष्ण नगर, पटना-800001

मूल्य—रु० 20/-

सर्वाधिकार लेखकाधीन

तृतीय संस्करण : 1996

RAVANA
A mythological play by Chaturbhuj

भूमिका

'रावण' की कल्पना करते ही त्रेतायुग के उस व्यक्ति का चित्र मानस-पटल पर उभरता है जिसके नाम से कभी त्रिभुवन प्रकम्पित होता था, जिसकी चाल से पृथ्वी दहलती थी, जिसके दस मस्तक और बीस हाथ थे, जिसकी गति से पवन घबराता था, जिसकी दृष्टि पड़ते ही बड़े-बड़े योद्धा-गण हथियार नीचे डाल देते थे और जिसके आगे-आगे विजयश्री हाथ जोड़े चलती थी। यदि रावण न होता तो राम की महत्ता स्थापित न होती। विश्व की अनेक भाषाओं में राम-रावण की कथा पायी जाती है। इतनी लम्बी दूरी तय करने के कारण तथा हजारों वर्ष की परम्परा में रमने के कारण राम-रावण की कथा में हेर-फेर होना असम्भव नहीं।

वैदिक साहित्य में रावण का उल्लेख अनुपलब्ध है। 'अथर्ववेद संहिता' में एक 'दशशीर्ष' ब्राह्मण का विवरण मिलता है। शायद इसी ने सर्वप्रथम सोमरस का पान किया था। 'वाल्मीकि रामायण' की रचना के पूर्व रावण-कथा की सृष्टि हो चुकी होगी क्योंकि रामजन्म के पूर्व रावण की दिग्विजय की कथा मिलती है। 'वाल्मीकि रामायण' में रावणकथा का विस्तार से उल्लेख है। कहा गया है कि रावण ब्रह्मा का वंशज, पुलस्त्य का पौत्र और विश्रवा का पुत्र था। उसकी माँ राक्षसकुलोत्पन्न 'कैकसी' थी। रावण, कुम्भकर्ण, विभीषण और शूर्पणखा, विश्रवा-कैकसी की सन्तान थे। विश्रवा की एक अन्य पत्नी से कुबेर का जन्म हुआ था जो यक्षों का स्वामी, पुष्पक विमान का मालिक एवं लंका का राजा था। कैकसी कुबेर को देखकर बराबर रावण को ताने दिया करती थी। रावण बचपन से ही हठी था। युवा होने पर पहले तो उसने कुबेर से लंका की सत्ता छीन ली और बाद में बलपूर्वक पुष्पक विमान भी ले लिया।

रावण महत्वाकांक्षी था, साथ ही अपने युग का विक्रमी वीर, महान् योद्धा और एक साम्राज्य का अधिपति था। वह अत्याचारी, परपीड़क और स्वच्छन्द भी था। उसने अपने जीवनकाल में असंख्य नारियों का हरण किया था और उनके द्वारा शापग्रस्त भी हुआ। आनन्दभोग और बलात्कार में भी वह अग्रणी था। ब्रह्मा और शिव से उसे अनेक वरदान प्राप्त हुए थे। शिव ने ही उसका नामकरण 'रावण' किया था—जिसका अर्थ है 'रोनेवाला' या 'रुलानेवाला'। महाभारत के 'वन-पर्व' और 'द्रोण-पर्व' में भी रावण का विवरण आया है। कई पुराणों में भी रावण की चर्चा उपलब्ध है। प्रवरसेन-कृत प्राकृत ग्रन्थ 'रावणवहो' और विमलसूरिकृत महाराष्ट्री प्राकृत ग्रन्थ 'पउमचरियं' में भी रावण का उल्लेख मिलता है। उसे जैनधर्म से भी जोड़ा गया है। बौद्ध त्रिपिटक के 'दशरथजातक' में भी उसका उल्लेख है। बौद्ध ग्रन्थ 'लंकावतार-सूत्र' के चीनी अनुवाद में 'रावण बुद्ध संवाद' उपलब्ध है। विश्व की विभिन्न भाषाओं में वर्णित राम-रावण की कथा में अनेक परिवर्त्तन पाये जाते हैं। कहीं सीता रावण की कन्या है, तो कहीं रावण-वध का श्रेय लक्ष्मण को है। रावण के शरीर में आर्य (विश्रवा) और अनार्य (कैकसी) दोनों का रक्त था। वह ब्राह्मण और राक्षस दोनों था। उसे दोनों के गुण और अवगुण मिले थे। यह स्पष्ट है कि वह आर्य-विरोधी था, आर्य संस्कृति से उसे वैर था। लगता है, भारत में उसके दो उपनिवेश थे—नैमिषारण्य और दण्डकारण्य। नैमिषारण्य में उसकी प्रतिनिधि थी प्रचण्ड राक्षसी ताड़का और दण्डकारण्य में प्रतिनिधि थी उसकी विधवा बहन शूर्पणखा।

रावण माया का आचार्य ही नहीं, बल्कि अनेक सिद्धियों का स्वामी भी था। वह युद्धनीति, कूटनीति और राजनीति में विशारद था। 'कृतिवास-रामायण' (बंगला) के अनुसार मरने से पूर्व उसने राम को राजनीति का उप-देश दिया था। रावण में स्वाभिमान कूट-कूटकर भरा था। सबकुछ खो देने के बाद भी वह शत्रु राम के आगे झुका नहीं। कहा जाता है कि सागर-तीर पर रामेश्वरम्-स्थापना के समय रावण ही राम का पुरोहित बना था और उसने राम को विजयी होने का आशीर्वाद दिया था। यह निम्नलिखित श्लोक से सिद्ध होता है—"तटे समुद्रे शिवस्थापनाय दशाननाचार्यकृत प्रतिष्ठा। रामेण पूजा···शुभाशीर्वाद दशाननेन···।"

रावण प्रचण्ड वीर था। वह उम्र में भी राम से बहुत बड़ा था। राम के पूर्वजों से उसे शत्रुता थी। राम के पूर्वज मान्धाता ने लंका तथा दक्षिणी महासागर के द्वीपसमूह पर अपनी जयध्वजा फहराई थी, रामपिता दशरथ ने रावण के सम्बन्धी शम्बरासुर का वध किया था। 'आनन्द रामायण' के अनुसार रावण जानता था कि दशरथ-कौशल्या के पुत्र राम द्वारा उसका वध होगा। इसलिए उसने दोनों को बन्दी बना लिया था। लेकिन दैवयोग से दोनों का मिलन हो गया और राम का जन्म हुआ। राम-जन्म के पूर्व रावण ने अयोध्या पर भी आक्रमण किया था। इससे सिद्ध होता है कि रावण-राम की शत्रुता पहले से थी। सीता-हरण ने केवल आग में घी का काम किया था। रावण राम का योग्य प्रतिद्वन्द्वी था। शील, शक्ति, पाण्डित्य और राज-नीति में उसका विशिष्ट स्थान था। वह वेदों का ज्ञाता था। साथ ही उसे तन्त्र-मन्त्र, संगीत, चिकित्साशास्त्र आदि का भी ज्ञान था। रावणकृत कई ग्रन्थों के उल्लेख मिलते हैं। उसने शिवताण्डवस्तोत्र की रचना की थी और स्वयं उसे गाता भी था। वीणावादन में भी वह पारंगत था।

रावण को दस सिर थे या नहीं—यह विवाद का प्रश्न है। एक जैन कथा के अनुसार जन्म के समय उसने नौ चमकीले मणियों की एक माला पहनी थी और उसके सिर की छवि नौ मणियों में नौ सिर के रूप में दिखायी देती थी। एक सिर उसे था ही। शायद इसीसे उसका नाम 'दशानन' पड़ा। चूँकि वह मायावी था और उसे कोई भी रूप धारण करने की सिद्धि थी, अतः सम्भव है, वह इच्छानुसार दशानन के रूप में भी रहता हो।

कुछ लोगों का मत है कि आज की लंका रावण की लंका नहीं थी, न सिंहल और लंका एक ही भूखण्ड का नाम था। लंका की स्थिति के बारे में भी काफी मतभेद है। रावण के कुछ उच्च आदर्शों को लेकर यह नाटक लिखा गया है। इस नाटक के लिखने के प्रसंग में अनेक विद्वानों से सम्पर्क स्थापित करना पड़ा। गुजराती के प्रसिद्ध लेखक श्री विनोद भट्ट ने रामेश्वरम्-स्थापना में रावण के पौरोहित्य के विषय में संस्कृत श्लोक का उद्धरण भेजकर मेरी शंका दूर की। हिन्दी के कवि श्री सत्यदेव नारायण अष्ठाना का एक गीत इस नाटक में है। अनेक ग्रन्थों से इस नाटक की रचना

में सहायता ली गयी है। उनके लेखकों, अनुवादकों और सम्पादकों का कृतज्ञ हूँ।

इसके प्रकाशन में मेरी पत्नी मनोरमा देवी और पुत्र अशोक प्रियदर्शी का विशेष योगदान रहा है। मैं इनके प्रति भी कृतज्ञ हूँ। अन्त में बिहार आर्ट थियेटर के संस्थापक-निदेशक श्री अनिल कुमार मुखर्जी के प्रति आभार प्रकट करता हूँ जिन्होंने इस नाटक के मंचन में अपनी अभिरुचि दिखलायी। साथ ही उन्होंने हिन्दी संस्करण के प्रकाशन के पूर्व इस नाटक का बंगला अनुवाद भी तैयार कर दिया है जो शीघ्र प्रकाशित होनेवाला है।

106, श्रीकृष्णनगर,
पटना-800001 (बिहार)

चतुर्भुज

सहायक ग्रन्थों की सूची

1. वाल्मीकि रामायण : श्रीपाद दामोदर सातवलेकर
2. युद्धकाण्ड की समालोचना : श्रीपाद दामोदर सातवलेकर
3. राम-कथा : डा० कामिल बुल्के
4. श्रीहनुमन्नाटकम् (संस्कृत)
5. आनन्द रामायण : पाण्डेय रामतेज शास्त्री
6. अद्‌भुत रामायण : पं० ज्वाला प्रसाद मिश्र
7. अध्यात्म रामायण : मुनिलाल
8. रामचरितमानस : ज्वाला प्रसाद
9. कम्ब रामायण (तमिल) : अनु०—न० वी० राजगोपालन
10. वयं रक्षामः : आचार्य चतुरसेन
11. कृतिवास-रामायण (बंगला)
12. मानस-पीयूष : अंजनीनन्दन शरण
13. शब्द कल्पद्रुम (बंगला)
14. श्रीरामचरित्र के तीन क्षेपक : श्रीरामकुमार दासजी
15. रंगनाथ रामायण (तेलुगु) : अनु०—ए० सी० कामाक्षिराव
16. सेतुबन्ध (प्रवरसेनकृत प्राकृत) : अनु०—डा० रघुवंश
17. रावणवह महाकाव्यम् (प्राकृत) : सम्पा०—डा० राधागोविन्द वसक
18. पउमचरियं (महाराष्ट्री प्राकृत) : मूल लेखक—विमलसूरि
19. पउमचरिउ (अपभ्रंश) : स्वयंभू
20. महाभारत : वनपर्व
21. शिवपुराण
22. श्रीमद्‌देवी भागवत पुराण
23. कूर्म पुराण
24. रघुवंशम् : कालिदास

25. दशरथ जातक (पालि)
26. अनामकं जातक (चीनी रामायण)
27. लंकावतार-सूत्र
28. मेघनाद-वध : माइकेल मधुसूदन दत्त
29. मेघनाद नाटक : चतुर्भुज
30. प्राचीन भारत में हिन्दू राज्य : वृन्दावन दास
31. हिन्दी प्रबन्ध काव्य में रावण : डा. सुरेशचन्द्र निर्मल
32. लंका की खोज : डा. हीरालाल शुक्ल
33. Hindu Mythology : W. G. Wilkins.
34. A Classical Dictionary of Hindu Mythology & Religion : John Dowson.
35. Epic Mythology : Hopkins.
36. The Ramayana of Valmiki : Hari Prasad Shastri.
37. The Ramayana : A. G. Atkins.
38. The Ramayana : R. K. Narayan.
39. Ramayana : C. Rajgopalachari.
40. Sanskrit-English Dictionary Sir Monier Williams.
41. The National Biographical Dictionary of India : J. S. Sharma.
42. The National Geographical Dictionary of India : J. S. Sharma.
43. History of Indian Literature : Vol. I. : Winternitz.

रावण

पात्र-परिचय

पुरुष

रावण : लंका का सम्राट्
मेघनाद : रावण का पुत्र
विभीषण : रावण का भाई
तरणीसेन : विभीषण का पुत्र
राम, लक्ष्मण : अयोध्या के वनवासी राजकुमार
हनुमान : राम का सहायक
विद्युत : दानवकुमार
मारीच : तपस्वी के वेश में एक राक्षस

स्त्री

नीलमणि (शूर्पणखा) : रावण की बहन
सीता : राम की पत्नी

[लंकापति रावण शिव की पूजा कर रहे हैं।]

शिवताण्डवस्तोत्रम्

जटाटवीगलज्जल प्रवाह पावितस्थले
गलेऽवलंम्ब लंवितां भुजंगतुंगमालिकां।
डमड्डमड्डमड्डमन्निनादवड्डमर्वयं
चकार चंडताण्डवं तनोतु नः शिवः शिवम् ॥ 1 ॥

जटाकटाह संभ्रमभ्रमन्निलिम्पनिर्झरी—
विलोल वीचिवल्लरी विराजमान मूर्द्धनि।
धगद्धगद्धगज्ज्वलल्ललाट पट्टपावके
किशोरचन्द्रशेखरे रतिः प्रतिक्षणं मम ॥ 2 ॥

धराधरेन्द्र नन्दिनी विलास वंधुवंधुर—
स्फुर दिदगन्त सतति प्रमोद मान मान से।
कृपा कटाक्ष धोरणी निरुद्धदुर्द्धरापदि
क्वचि दिदगंबरे मनो विनोद मेतु वस्तुनि ॥ 3 ॥

जटाभुजंग पिंगल स्फुरत्फणा मणिप्रभा—
कदम्व कुंकुमद्रव प्रलिप्तदिग्वधू मुखे।
मदान्धसिन्धुरस्फुर त्वगुत्तरीय मेदुरे
मनोविनोदमद्भुतं विभर्तु भूतभर्तरि ॥ 4 ॥

(रावण-रचित)

प्रथम दृश्य

स्थान—वनप्रदेश

[फूलों से सजी रावण की बहन नीलमणि (शूर्पणखा) टहल-टहलकर गा रही है।]

गीत

आँसू भरे नयन प्यासे हैं
रूप-सुधा-रस रीत रहे
मोहक वन-द्रुमलता सुशोभित
विह्वल पल-क्षण बीत रहे।
आये अब आये कुंजन में
स्वप्न, स्वप्न बन जाते हैं
मन भरमाया दुखता रहता
विरह-व्यथा के गीत रहे॥
छलना धन का नाम उजागर
तुम में सजग उतर आता
कब तक बिरस रहेगा जीवन
हार इधर, तुम जीत रहे॥
मुरझे कुसुम सुरभि से पूरित
पर न आस मुस्कायी है
ओ, निर्मोही, और छलो मत
ऐसा कर दो, प्रीत रहे॥

[दानवकुमार विद्युत धीरे-धीरे आकर गीत सुनते हैं। नीलमणि को कुछ पता नहीं है। अचानक विद्युत पर उसकी दृष्टि पड़ती है। वह लज्जित हो जाती है।]

विद्युत : नीलमणि, तुमने गाना क्यों बन्द कर दिया ?

नीलमणि : क्या तुम नहीं जानते ?

विद्युत : नहीं।

नीलमणि : तुम्हारी उपस्थिति के बाद गाने की आवश्यकता नहीं जान पड़ती। गीत स्वयं ही समाप्त हो जाता है।

विद्युत : मेरी उपस्थिति से गाने का क्या सम्बन्ध है ?

नीलमणि : वह गीत तुमने सुना ?

विद्युत : हाँ, सुना।

नीलमणि : क्या उसका आशय बता सकते हो ?

विद्युत : सुनने में अच्छा लगा—इससे अधिक मैं नहीं जानता।

नीलमणि : बड़े भोले हो विद्युत।

विद्युत : यह तो मैं नहीं जानता। हाँ, इतना अवश्य जानता हूँ कि तुम्हारे इस गीत का आशय मैं व्यक्त नहीं कर सकता।

नीलमणि : यह वियोगगीत है। जब तुम सम्मुख नहीं होते हो तो मैं वियोगगीत गाकर तुम्हारा स्मरण करती हूँ।

विद्युत : नीलमणि, कदाचित् तुम्हें पता नहीं कि मैं जब तुमसे दूर चला जाता हूँ तो मुझ पर क्या बीतती है।

नीलमणि : तुम्हारे मुख से सुनूं—क्या बीतती है ?

विद्युत : कुछ अच्छा नहीं लगता। लगता है, अमावस्या की गम्भीर काली रात में वन के मध्य खड़ा हूँ। कुछ दिखायी नहीं पड़ता। फिर लगता है कि गम्भीर सागर का गर्जन हो रहा है, अनुभव होता है कि उसकी उत्ताल तरंगें वेग से आकाश से टकरा रही हैं। हृदय में उथल-पुथल होती है और फिर मैं तीव्र वायु की तरह दौड़कर तुम्हारे पास चला आता हूँ।

नीलमणि : उसके बाद···

विद्युत : यहाँ लंका की राजकुमारी से बातें करता हूँ तो मन को शान्ति

मिलती है। लगता है कि जिस अमूल्य निधि के लिए मैं युग-युग से उल्कासदृश्य संसार के कोने-कोने में भटक रहा था, वह मेरे पुण्य-प्रताप से मेरे सामने उपस्थित है। इस मिलन में उषा की स्निग्धता, यौवन का आवेग, पुष्प की कोमलता और इस वनप्रदेश की हरीतिमा है।—नीलमणि, सच मानो—तुम मेरी सर्वस्व हो।

नीलमणि : दानवकुमार, तुम जानते हो—लंकेश्वर रावण मेरा भाई है और तुम उसके शत्रु हो। फिर यह छिप-छिपकर मिलना कब तक चलेगा ?

विद्युत : मैं अपने राज्य से दूर, बिलकुल अकेला, तुम्हारे प्रेम में बँधा यहाँ इतने दिनों से निवास कर रहा हूँ।—तुम यदि चाहो तो मैं तुम्हारा हरण कर सकता हूँ। लंकेश्वर को पता तक नहीं चलेगा।

नीलमणि : (कुछ हँसकर) क्या तुम मेरे भाई लंकेश्वर रावण को इतना मूर्ख समझते हो ? विद्युत, उसकी बहन का हरण करके तुम पृथ्वी, आकाश, पाताल, कहीं भी छिप नहीं सकते। रावण भुवन-विजयी है। उसके दूत चारों ओर फैले हैं। उसके पास कुबेर का पुष्पक विमान है। उसमें बैठकर वह क्षणमात्र में कहीं भी जा सकता है। उसके पराक्रम को भी जानते हो।

विद्युत : सबकुछ जानता हूँ।—फिर तुम्हीं बताओ, मैं क्या करूँ ?

नीलमणि : उचित है कि तुम मेरे प्रेम को विस्मृत कर अपने राज्य में लौट जाओ।

विद्युत : नीलमणि, यह तुम कहती हो ?—क्या मैं अबतक भ्रम में था ?

नीलमणि : दानवकुमार, मेरा प्रेम आकाश की तरह स्थिर है। कैशोर और यौवन की प्रचण्ड अभिसन्धि में मैं तुमसे मिली। भावना के झंझावात में जब मैं पथ पर अन्धकार का अनुभव कर रही थी, तब सूर्य की किरण की तरह तुम सामने आये और मैं अपने को पूर्ण अनुभव करने लगी।

विद्युत : फिर तुमने—

नीलमणि : लेकिन उस समय मैंने इस उद्वेग को समझा नहीं। तुम्हारे प्रेम का सहारा पाकर आगे बढ़ती गयी। नहीं समझ पा रही थी कि आगे दुर्गम

सागर है जिसे हम पार नहीं कर सकते।

विद्युत : नीलमणि, मेरे हाथ में एक पुष्प है। क्या मैं उसे तुम्हारी कुन्तल-राशि में लगा दूं ?

नीलमणि : हाँ विद्युत, तुम्हारा यह पुष्प आज के दिन हमारा बहुमूल्य आभूषण होगा। लगा दो।

[विद्युत निकट आकर पुष्प नीलमणि के केश में लगा देते हैं।]

विद्युत : सुन्दर !

नीलमणि : दानवकुमार, क्या तुम एक काम कर सकते हो ?

विद्युत : आदेश दो नीलमणि।

नीलमणि : मैं तुम्हारे रक्त का टीका लगाना चाहती हूं।

[विद्युत अपनी बाँह पर कटार मारते हैं और अपने रक्त का टीका नीलमणि को लगा देते हैं।]

विद्युत : अब तो तुम प्रसन्न हो ?

नीलमणि : आज से तुम मेरे पति हुए।

विद्युत : नीलमणि, यह क्या ?

नीलमणि : तुम्हारे रक्त का टीका मेरे ललाट पर लगा है दानवकुमार ! इसमें आश्चर्य की कोई बात नहीं है।

विद्युत : लेकिन इस कौतुक का अर्थ मेरी समझ में नहीं आया।

नीलमणि : यह कौतुक नहीं, सत्य है विद्युत। अब तुम मेरे पति हो, सर्वस्व हो, मेरे प्राण हो। अब हम दोनों को कोई अलग नहीं कर सकता।

विद्युत : लेकिन लंकेश्वर रावण जब यह सुनेंगे तो फिर क्या होगा ?

नीलमणि : रावण मेरा भाई है, मुझसे अत्यधिक स्नेह करता है। जब वह जान लेगा कि मैंने स्वेच्छा से तुम्हारा वरण किया है, तब वह अपनी स्वीकृति अवश्य दे देगा। इसे सत्य मानो।

विद्युत : नीलमणि, लगता है, शीघ्रता में लिया गया तुम्हारा वह निर्णय लंका के सम्राट् को मान्य नहीं होगा। वैसी स्थिति में···

नीलमणि : वैसी स्थिति में मैं रावण की किसी भी आज्ञा की अवहेलना करूंगी।

विद्युत : क्या तुम रावण की आज्ञा की अवहेलना कर सकती हो ? महाबलशाली रावण क्या तुम्हारे इस निर्णय को स्वीकृति प्रदान करेंगे ? मुझे विश्वास नहीं होता।

नीलमणि : कुम्भकर्ण और विभीषण की शरण में जाऊँगी। हम सब एक ही माँ की सन्तान हैं। कुम्भकर्ण और विभीषण की बात को रावण कभी नहीं उठा सकता।

[दूर से रावण का स्वर सुनायी पड़ता है।]

रावण : नीलमणि !

विद्युत : (भयमिश्रित स्वर) यह किसका स्वर है ?

नीलमणि : रावण का। क्या तुम भयभीत हो गये ?—नहीं दानवकुमार, भय की आवश्यकता नहीं है। दोषी मैं हूँ। रावण मुझे दण्ड देगा। तुम साहस से काम लो। दानवकुमार हो तुम। रावण तुम्हारा चिरशत्रु है। इसलिए भय न करो। नीलमणि तुम्हारे साथ है।

[रावण का प्रवेश। विद्युत और रावण दोनों एक दूसरे की ओर ध्यान से देखते हैं। रावण के नेत्रों में क्रोध है। विद्युत शान्त है।]

रावण : नीलमणि, यह उद्धत् युवक कौन है ?

नीलमणि : इसका उत्तर यह युवक ही देगा।

रावण : युवक, तुम कौन हो ?—कैसे तुमने, इस एकान्त में, नीलमणि से साक्षात्कार किया ? उत्तर दो।

विद्युत : लंकेश्वर, मैं दानवकुमार विद्युत हूँ। अपने राज्य की सीमा से बहुत दूर, नीलमणि के प्रेम-बन्धन में बँधा, मैं आपके राज्य की सीमा में खड़ा हूँ।

रावण : प्रेम-बन्धन ?—नीलमणि, क्या यह सच है ?

नीलमणि : सच है।

विद्युत : सम्राट्, एक और सूचना दे दूं। नीलमणि आज से मेरी पत्नी है।

रावण : (सक्रोध) उद्धत् युवक, लंकेश्वर का अपमान करके अपनी मृत्यु को आमन्त्रण न दो। नीलमणि, तुम चुप क्यों हो ?—क्या इस युवक पर तुम मुग्ध हो ? सच-सच बताओ।

नीलमणि : सच बताऊँगी रावण। मैं इस युवक की पत्नी हो चुकी हूँ। देखो मेरे ललाट पर इसके रक्त का टीका।—निवेदन करती हूँ, अपनी बहन के सुख के लिए तुम अपनीं स्वीकृति दे दो।

रावण : यह युवक सुन्दर है, वीर है, लेकिन दानव है।

नीलमणि : दानव होने से कोई हेय नहीं होता रावण। लंका की महारानी मन्दोदरी—मेरी भाभी—भी तो मयदानव की कन्या हैं।

रावण : मयदानव और इसके कुल में बड़ा अन्तर है। युवक, तुम किस कुल के हो ?

विद्युत : कालकेय-कुलोत्पन्न हूँ मैं लंकेश्वर।

रावण : (बंकिम भृकुटि) कालकेय ?—तुम कालकेय हो युवक ?

विद्युत : हाँ सम्राट्।

रावण : क्या तुम नहीं जानते कि तुम्हारा कुल मेरा चिरशत्रु है ?

विद्युत : जानता हूँ।

रावण : फिर तुमने ऐसा दुस्साहस क्यों किया ?—आज वर्षों से तुम्हारे कुल से मेरा संग्राम चल रहा है। भुवनविजयी रावण के सामने आज भी कालकेय पर्वत के समान खड़े हैं। यह मेरी दया समझो कि मैंने अभी उस ओर ध्यान नहीं दिया है। लेकिन सच मानो कि शीघ्र ही मैं एक-एक कालकेय का रक्तपान करूँगा। तुम्हारा एक भी सम्बन्धी जीवित न बचेगा।

विद्युत : सम्राट्, आपके शौर्य को कौन नहीं जानता ? यदि आप इस विवाह की स्वीकृति दें तो कालकेय आपके मित्र हो जायेंगे। उनकी मित्रता आपके लिए शुभ होगी।

रावण : विद्युत, इस विवाह की स्वीकृति मैं एक शर्त पर दे सकता हूँ।

विद्युत : कैसी शर्त ?

रावण : आज से सभी कालकेय लंकेश्वर की अधीनता मान लें।

विद्युत : यह असम्भव है सम्राट।

रावण : तो फिर यह भी सम्भव नहीं कि लंकेश्वर की बहन तुम्हारी पत्नी बने।

नीलमणि : तुम कैसी बातें करते हो रावण ? देखते नहीं ?—मैं इसकी पत्नी बन चुकी हूँ।

रावण : नीलमणि, यौवन की उद्दाम लालसा ने तुम्हारे विवेक पर चादर डाल दी है। एक विद्युत क्या, सौ विद्युत तुम्हारे चरणों की पूजा करेंगे।। यह युवक तुम्हारा पति नहीं हो सकता। यह मेरा चिरशत्रु है।

नीलमणि : लेकिन क्या इसके रक्त का टीका व्यर्थ जायेगा ?

रावण : तुम्हें देकर रावण अपने मस्तक पर पराजय का टीका नहीं लगा सकता नीलमणि। पोंछ डालो उस टीके को।

नीलमणि : यह असम्भव है।

रावण : 'असम्भव' शब्द का उच्चारण करके मेरी क्रोधाग्नि को अब और प्रज्ज्वलित न करो।

नीलमणि : रावण, क्या अपनी बहन के सुख के लिए तुम इतना भी नहीं कर सकते ?

रावण : सब कुछ कर सकता हूँ, लेकिन यह नहीं कर सकता। जो व्यक्ति मेरा शत्रु है, वह मेरी बहन का पति नहीं हो सकता—कदापि नहीं।

विद्युत : महाराज रावण, आप नीलमणि को मेरे साथ जाने दें।

रावण : यदि तुम नीलमणि के लिए अपने प्राण देना चाहते हो तो इसका हरण करो—आज—अभी—मेरे सम्मुख। क्यों नीलमणि ?

विद्युत : लंकेश्वर, मैं जानता हूँ, आपका अभिप्राय क्या है। नीलमणि, तुम मेरे साथ चलने के लिए तैयार हो ?

नीलमणि : हाँ, तैयार हूँ।

विद्युत : तो महाराज रावण, सुन लें। दानवकुमार विद्युत आपके सामने नीलमणि का हरण करता है। साहस हो तो रोक लें।

रावण : (अट्टहास) साहस ? तुम लंकेश्वर का साहस देखना चाहते हो ?

उस लंकेश्वर का जिसके संकेत पर सूर्योदय और सूर्यास्त होते हैं, जिसके भय से सागर की तरंगें शान्त हो जाती हैं, जिससे देवता और दानव त्रस्त हैं ?

नीलमणि : रावण, यह विद्युत के जीवन-मरण का प्रश्न नहीं है, बल्कि मेरे जीवन-मरण का प्रश्न है।

रावण : नीलमणि, अन्तिम बार कहता हूँ। इस युवक को छोड़ दो। संसार की परिक्रमा करो। देवता, दानव, मानव, किन्नर, यक्ष, राक्षस—तुम जिसे चाहो, पसन्द कर लो। रावण प्रतिज्ञा करता है—उस व्यक्ति को बल से, छल से, विनय से, युद्ध से—चाहे जैसे भी हो—तुम्हारे चरणों के पास लाकर खड़ा कर देगा।—यह युवक मेरा चिरशत्रु है। इसके साथ तुम्हारा विवाह नहीं हो सकता।

नीलमणि : नीलमणि ने समझ-बूझकर अपने वर का चुनाव किया है, इस युवक को पति मान लिया है। फिर क्या यह उचित होगा कि मैं दूसरे को वरूँ ?

रावण : हम उस संस्कृति के उपासक हैं जहाँ बल-विक्रम की पूजा होती है। लंका के राजमहल में अनगिनत स्त्रियाँ ऐसी हैं जिनका मैंने हरण किया है। यदि अपनी बहन के लिए मैं किसी योग्य पुरुष का हरण करूँ तो इसमें बुरा क्या है ?

नीलमणि : तुम्हारे सिद्धान्त मेरे हृदय को स्पर्श नहीं कर पाते रावण।

रावण : यह मेरे असीम स्नेह का परिणाम है अन्यथा अब तक तुम और यह युवक जीवित न रहते। बोलो विद्युत, क्या तुम्हारा निर्णय अन्तिम है ?

विद्युत : सम्राट, जब नीलमणि मेरे लिए इतना कुछ कर सकती है, तब मैं भी इसके लिए प्राणोत्सर्ग कर सकता हूँ।

रावण : उत्तम !—युद्ध करो वीर।

नीलमणि : रावण !

रावण : नीलमणि, तुम जानती हो कि रावण पर जब युद्धोन्माद छा जाता है तो वह किसी का तर्क नहीं सुनता।—युद्ध करो दानवकुमार।

[रावण आक्रमण करते हैं। विद्युत बचा लेते हैं। युद्ध। रावण के आघात से विद्युत घायल होकर गिर पड़ते हैं। रावण का अट्टहास। नीलमणि दौड़कर विद्युत को संभालती है।]

विद्युत : नीलमणि, क्षमा करो। बड़ी इच्छा थी कि तुम्हें अपने राज्य में ले जाकर अपनी रानी बनाता। लेकिन विधाता को यह स्वीकार नहीं हुआ। थोड़ी देर के लिए मैं तुम्हारा पति बना। कोई सुख न दे सका। —ओह !—कष्ट हो रहा है।

[नीलमणि रोने लगती है]

विद्युत : भाग्यहीन हूँ मैं।—ओह ! महाराज रावण, क्षमा। नीलमणि, मेरी ···क्षमा, क्षमा।

[मृत्यु]

रावण : नीलमणि, क्षमा करो।

नीलमणि : क्षमा ? क्षमा माँगते हो रावण ?—जिस नारी के विवाह का टीका अभी तक सूखा नहीं, उसके निर्दोष पति की हत्या करके तुम क्षमा माँगते हो ? लज्जा नहीं आती ? तुम्हारी तलवार की पिपासा अभी शान्त नहीं हुई है।···मेरी भी हत्या कर दो रावण !

रावण : नीलमणि···!

नीलमणि : कौन है नीलमणि ? नीलमणि तो इसके साथ ही चली गयी। सामने खड़ी है शूर्पणखा—शूर्पणखा। हाँ, शूर्पणखा। (**अपने नखों की ओर देखती है**)—तुम मुझे बचपन में इसी नाम से चिढ़ाया करते थे। आज मैं सचमुच शूर्पणखा हूँ। मेरे कारण मेरे पति की हत्या हुई। रावण कम-से-कम मेरा यह निवेदन मान लो। मेरी हत्या कर दो।

रावण : नीलमणि, तुम विक्षिप्त हो रही हो। चलो महल में।

नीलमणि : रावण, कहती हूँ, मेरी हत्या करो।

रावण : नीलमणि···!

नीलमणि : शूर्पणखा कहो—शूर्पणखा।

रावण : अच्छी बात है। बहन शूर्पणखा, इस दानवकुमार को भूल जाओ। आदेश दो, तुम्हारे योग्य वर मैं ढूढ़ूंगा।

नीलमणि : मेरे से दूर चले जाओ रावण ! समझ लो, तुम्हारी बहन मर गयी।

रावण : ऐसा नहीं हो सकता। चलो लंका के राजमहल में। लंकेश्वर रावण आग्रह करता है।

नीलमणि : अब मैं लंका नहीं लौटूंगी। इस दानवकुमार की चिता मेरी सेज होगी। मैं इसके साथ सती हो जाऊँगी।

रावण : बहन, मुझसे भूल हुई। क्षमायाचना करता हूँ। तुम प्राण देने का संकल्प त्याग दो।

नीलमणि : बाल अरुण को राहु ने ग्रस लिया।—ओह ! तुमने···तुमने मुझे विधवा बना दिया। अब मैं कौन-सा मुख लेकर लंका के राजमहल में प्रवेश करूँगी ?

रावण : बहन, तुम मुझे दण्ड दो। मेरा सर्वस्व ले लो। पर प्राण न दो। कुम्भकर्ण और विभीषण यदि यह जान लेंगे कि मेरे कारण तुमने प्राण दिये हैं तो वे मुझे कभी क्षमा नहीं करेंगे। बीती बातें भूल जाओ।

नीलमणि : लंका का राजमहल मेरे लिए कारागार है। मैं तुम्हारे महल में कभी नहीं जाऊँगी।

रावण : तब तुम दण्डकारण्य चली जाओ। वहाँ खरदूषण विशाल सेना के साथ निवास कर रहे हैं। वे तुम्हारे आदेश का पालन करेंगे। लंकेश्वर की प्रतिनिधि बनकर तुम दण्डकारण्य का शासन करो। वह स्थल आर्यावर्त्त की सीमा पर है। आर्यावर्त्त का कोई वीर दण्डकारण्य की सीमा पार न कर सके—यह देखना तुम्हारा उत्तरदायित्व होगा। बोलो बहन, स्वीकार है ?

नीलमणि : स्वीकार है।

रावण : एक बात और। यदि तुम्हें कभी किसी का भय हो, स्मरणमात्र से रावण वहाँ तुम्हारी सहायता के लिए उपस्थित मिलेगा।—तुम जब भी चाहो, लंका का राजद्वार तुम्हारे लिए खुला रहेगा। अब मैं जाता हूँ।

[प्रस्थान। नीलमणि देखती रहती है। फिर सिसकने लगती है।]

नीलमणि : दानवकुमार, तुमने मेरे लिए प्राणोत्सर्ग किये। अपनी स्वाधीनता नहीं बेची। तुम्हारे ऋण को मैं कैसे चुका पाऊँगी ?—नीलमणि से शूर्पणखा ! शूर्पणखा आज से रावण के लिए काल है। शूर्पणखा रावण के मरण का कारण बनेगी। दण्डकारण्य में इसकी योजना तैयार होगी। अब तो प्रतिहिंसा ! प्रतिहिंसा !!

[भयानक अट्टहास करती हुई जाती है।]

द्वितीय दृश्य

स्थान—दण्डकारण्य में राम की कुटी
समय—प्रभात

[गोदावरी का कल-कल निनाद सुनायी पड़ता है। राम और लक्ष्मण बातें कर रहे हैं। दोनों के सिर पर जटा है। दोनों पीतवस्त्र धारण किये हुए हैं। साथ में धनुर्बाण।]

राम : लक्ष्मण, सुन रहे हो गोदावरी का कल-कल निनाद ?

लक्ष्मण : सुन रहा हूँ भैया। इस पुण्यसलिला के कल-कल विनोद को सुनकर अयोध्या के सरयू-तट का स्मरण हो आता है जहाँ हम चार भाई भिन्न-भिन्न प्रकार के कौतुक रचा करते थे और अयोध्या की जनता हमें एकटक देखा करती थी।

राम : अयोध्या और सरयू-तट ! कई वर्ष हो गए उस आनन्द को छोड़े हुए। कभी कल्पना भी नहीं की थी कि हमें चौदह वर्षों तक अरण्यवास करना पड़ेगा। अयोध्या से चित्रकूट और फिर दण्डकारण्य में गोदावरी के तीर पर पंचवटी !—पता नहीं, वर्षों की यह अवधि कैसे कट गयी।

लक्ष्मण : भैया, हमारे कष्टों की जड़ है भरत की जननी कैकेयी। उसीने यह विषवृक्ष बोया है, उसीके कारण आपके राज्याभिषेक की कल्पना में सुख-विभोर अयोध्या नगरी अचानक दुःख में डूब गयी, हमें वनवास करना पड़ा, पिता की असमय में मृत्यु हुई। जिस भरत को राजमुकुट देने के लिए यह कुमन्त्रणा हुई, वही भरत नगर के बाहर संन्यासी का जीवन व्यतीत करने लगा।

राम : लक्ष्मण, इसमें माता कैकेयी का कोई दोष नहीं था। यह तो भाग्य की बात थी। प्रारब्ध का लिखा कोई नहीं मिटा सकता। होनी होकर रहती है। कदाचित् हमारे इस दुःख में संसार का कोई मंगल होनेवाला हो। आश्रम के ऋषिगण तो ऐसा ही कहते हैं।

लक्ष्मण : ऋषिगण का कथन सत्य प्रतीत होता है। उसका एक उदाहरण है आपके द्वारा विराध-वध। उस भयानक राक्षस से योजनों दूर तक के लोग भयकम्पित थे। उसने तो देवी सीता को भी अपने पंजे में जकड़ लिया था। जब मैं उसके सामने गया तो उसने मुझे भी पकड़ लिया। यह आपके तीखे बाण का ही प्रभाव था कि हम लोग मुक्त हुए और वह राक्षस मारा गया। राह में और भी अनेक राक्षसों का वध हुआ।

राम : पंचवटी में रहते हुए अनेक वर्ष बीत गये। वनवास की अल्प अवधि अब शेष रह गयी है। क्यों न शेष समय हम यहीं बितायें ? तुम्हारी क्या राय है लक्ष्मण ?

लक्ष्मण : मैं आपके विचार से सहमत हूँ। देवी सीता के विचार को भी जान लें तो अच्छा हो। लेकिन एक समस्या है। दण्डकारण्य के राक्षस हमें शान्ति से रहने नहीं देंगे। वे बराबर उपद्रव करते रहते हैं। यहाँ के मुनियों को सताते हैं। इसलिए हमें सतर्क रहना होगा।

राम : तुम ठीक कहते हो लक्ष्मण। यही कारण है कि ये मुनिगण भी नहीं चाहते कि हम उन्हें अरक्षित छोड़कर जायें। दण्डकारण्य के राक्षसों का नाश आवश्यक है। लक्ष्मण, तुम मेरे लिए और देवी सीता के लिए असीम कष्ट उठा रहे हो। क्या हम इस जन्म में तुम्हें इसका प्रतिदान दे सकेंगे ?

लक्ष्मण : यह आप क्या कहते हैं भैया ?—यह तो मेरा कर्त्तव्य है जिसका मैं पालन कर रहा हूँ। आप यही आशीर्वाद दें कि मैं अपने कर्त्तव्य का और भी उत्साह से पालन कर सकूँ।

राम : तुम रात भर जागते हो। दिन भर कुटी के इर्द-गिर्द घूमते रहते हो। तुम्हारे भय से कोई राक्षस इधर आने का साहस नहीं कर पाता। भाई मेरे, इस दुःख में राम और सीता के लिए तुम्हीं सबसे बड़े सम्बल हो।—मैं चाहता हूँ कि आज तुम दिन भर विश्राम करो।

मैं घूमता रहूँगा ।

लक्ष्मण : ऐसा नहीं होगा—

राम : क्या राम का निवेदन तुम अस्वीकार कर दोगे ?

लक्ष्मण : नहीं भैया, ऐसा मेरा दुस्साहस नहीं है ।

राम : तो फिर जाओ । विश्राम करो । आज तुम्हें छुट्टी है ।

लक्ष्मण : आपका आदेश है तो जाता हूँ ।

[प्रणाम करके जाते हैं । राम टहलते रहते हैं ।]

राम : माँ गोदावरी ! तुम धरती का आभरण हो, उत्तम पदार्थ प्रदान करनेवाली हो, अनेक धाराओं में प्रवहमाण हो, उष्णता को शान्ति देने वाली हो, भ्रमरों से गुंजित हो, नीलोत्पल-रूपी नयनों से सबको देख रही हो, उत्तम पुष्पों को अपने तटों पर बिखेर रही हो ।—नहीं माँ, मैं तुम्हारी चरण-रज को त्याग कर नहीं जाऊँगा । तुम्हें देखकर अपनी सरयू नदी याद आ जाती है ।—लो, सीता आ गयीं ।

[सीता का प्रवेश । जूड़े में पुष्प । पीतवस्त्र । वनवासिनी के वेष में । सीता के हाथ में पुष्प हैं । आते ही प्रणाम करके पुष्प राम के चरणों में डाल देती है ।]

राम : सीता, तुम इस अभ्यास को भूल नहीं पातीं ।—यह अयोध्या का राजमहल नहीं, बल्कि दण्डकारण्य है । यदि तुम अपने इस अभ्यास को थोड़ा कम भी कर दो तो कोई हानि नहीं । यहाँ तो कोई निन्दक भी नहीं है जिसका मुझे और तुम्हें भय हो ।

सीता : आर्यपुत्र, इस अभ्यास को मैं भूलना नहीं चाहती । महल हो या वन—निन्दक हो या प्रशंसक—मैं तो यह अपने सुख लिए करती हूँ, आपके सुख के लिए नहीं । याद है आपको जनकपुर का वह क्षण जब झरोखे से मैंने प्रथम बार आपको देखा था ?—तब आप अपरिचित थे । मैंने अनजाने में आपकी ओर पुष्प फेंके थे । आपने ज्योंही उधर दृष्टि की, मैं तत्क्षण ओझल हो गयी ।

राम : स्मरण है सीते ।

सीता : तब से आज तक, हर प्रभात में, मैं आपके चरणों में पुष्प अर्पित करती आयी हूँ । इससे मुझे बड़ा सुख मिलता है, बहुत सन्तोष होता है ।

राम : जनकपुर की स्वयंवर-सभा !—क्या जानता था कि मैं वहाँ शिवधनुष भंग करने जा रहा हूँ, क्या जानता था कि राम अपूर्ण है और वह लक्ष्मीसदृश्य सीता का पाणिग्रहण कर पूर्ण होने जा रहा है ?—उस स्वयंवर-सभा में ही तो हम राम न रहकर राम-सीता हो गये या यों कहो कि हम सीता-राम हो गये ।—वहाँ अनेक राजागण थे—एक-से-एक पराक्रमी, एक-से-एक तेजस्वी । लेकिन शिवधनुष कोई उठा तक नहीं सका । यह तो तुम्हारा पुण्य था कि देखते-देखते मैंने शिवधनुष उठा लिया, तोड़ भी दिया ।

सीता : मुझे सब कुछ स्मरण है आर्यपुत्र । उसके बाद अयोध्या की जनता ने मेरा अभिनन्दन किया । कुछ वर्ष हँसी-खेल, आमोद-प्रमोद में व्यतीत हो गये ।—फिर आपके राज्याभिषेक का मुहूर्त्त निश्चित हुआ । सारी अयोध्या में आनन्द छा गया । लेकिन मंझली माँ कैकेयी के कारण समस्त आनन्द शोक में परिणित हो गया और आपको चौदह वर्षों के लिए वन में आना पड़ा ।

राम : मैंने तुम्हें मना किया था सीता कि तुम मेरे साथ वन में न आओ । लेकिन पता नहीं क्यों तुमने जिद ठान ली । लक्ष्मण को भी मना किया था । लेकिन भला वह क्यों मानता ?—वह भी साथ-साथ चला आया ।

सीता : जहाँ राम, वहीं सीता । यह तो आपने अभी-अभी कहा है । फिर यह क्या सम्भव था कि आप वनों में भटकते और मैं अयोध्या के महल में राजसुख भोगती ?—यह सत्य है कि मेरे कारण आपको और लक्ष्मण को कुछ अधिक परेशानी होती है, लेकिन मुझे तो सुख-ही-सुख है ।

राम : अब लगता है कि तुमने आकर मुझे जीवन-दान दिया । यदि तुम न होतीं तो मुझे और भी अधिक कष्ट होता । शुष्क मरुभूमि में तुम्हारी उपस्थिति से हरी उपत्यका का अनुभव होता है ।

सीता : लक्ष्मण को नहीं देख रही हूँ । उन्हें कहीं भेजा है आपने क्या ?

राम : लक्ष्मण रात-रात-भर जाग कर मेरी कुटी के चारों ओर पहरा देता है। दिन में भी धनुर्बाण लिये मेरी और तुम्हारी सुरक्षा के लिए तत्पर रहता है। विश्राम करता ही नहीं। इसलिए मैंने आग्रह करके उसे विश्राम करने को कहा है।

सीता : वैसे भाई पर किसे गर्व नहीं होगा आर्यपुत्र ?—अपनी स्त्री उर्मिला को छोड़ वे वर्षों से हमारे साथ हैं।

राम : उर्मिला की महानता के आगे मैं नततस्तक हूँ। यह उसका महान् त्याग है कि उसने लक्ष्मण को हमारे साथ वनों में भेजा है। वह साध्वी है।

सीता : मैं नारी हूँ। उर्मिला के पति-वियोग के कष्ट का मैं अनुभव करती हूँ आर्यपुत्र ! आने के समय मेरे गले में बाँहें डालकर वह रोयी थी। उसके उष्ण उच्छ्वास, नीरभरे नयन और शुष्क मुस्कान को मैं भूल नहीं पाती हूँ। मेरे साथ वन में आने के लिए वह बहुत रोयी थी, मैंने स्वीकृत भी दे दी थी, लेकिन लक्ष्मण बिल्कुल तैयार नहीं हुए। यही कारण है कि वह हमारे साथ आ न सकी।

राम : सीता, तुम स्नान करके तुरन्त लौटी हो। जाओ, पूजा का आयोजन करो। मैं भी आता हूँ।

सीता : जो आज्ञा। **(प्रस्थान)**

राम : भूमिपुत्री सीता ! तुम सचमुच लक्ष्मी हो। लोग कहते हैं कि तुमने धरती के गर्भ से जन्म लिया है। सच है, कोई मानवी इस देवी को जन्म नहीं दे सकती। तभी तो इस अभाव की स्थिति में इस देवी के साथ रहने से अभाव अभाव नहीं लगता।—अरे, यह सामने से कौन आ रही है ? लगता है, स्वर्ग की अप्सरा विहार करने के लिए पंचवटी में आ गयी हो। रति को पराजित करनेवाला यह रूप, पुष्पों का आभरण, चंचला हिरणी की तरह चाल !—कौन है यह ?

[शूर्पणखा का प्रवेश। फूलों से सजी। मादक चाल। ओठों पर मुस्कान। वासना से आक्रान्त। आकर एकटक राम को देखती रहती है। राम भी उसे देखते रहते हैं। फिर अचानक शूर्पणखा अट्टहास करती है।]

राम : कौन हो तुम देवी ?

शूर्पणखा : श्यामल तरुण, तुम कौन हो ?—इस घोर वनप्रदेश में क्यों आये हो ?

राम : मेरा नाम राम है।

शूर्पणखा : राम !—राम कौन ?—कहाँ के वासी हो ?—लगता है कि तुम इधर के रहनेवाले नहीं हो। अपना परिचय दो।

राम : मैं अयोध्या का राजकुमार हूँ। पिता और माता के आदेश से निर्वासित हूँ।

शूर्पणखा : निर्वासित हो ?—तुम्हारा अपराध ?

राम : कुछ नहीं। नियति की इच्छा ! माता चाहती थीं कि मेरा छोटा भाई भरत अयोध्या का राजा बने।

शूर्पणखा : तुमने प्रतिवाद नहीं किया ?

राम : प्रतिवाद किसलिए ?—आदेश पाते ही वनों में चला आया। चौदह वर्ष में अब थोड़ी ही अवधि शेष है।

शूर्पणखा : तो क्या तुम्हारा भाई भरत अयोध्या का राजा है ?

राम : नहीं, वह तो तपस्वी है। उसने भी सिंहासन पर बैठना अस्वीकार कर दिया। नगर के बाहर तपस्वी की तरह रहता है और मेरे लौटने की राह देख रहा है।

शूर्पणखा : आश्चर्य है ! क्या आर्यावर्त के लोग ऐसे महान् हैं ?

राम : यह तो हमारी परम्परा है।—हाँ, तुमने मेरा परिचय पूछ लिया। अब अपना परिचय दो।

शूर्पणखा : मेरा नाम शूर्पणखा है।—क्यों, तुम्हें आश्चर्य हो रहा है ? यदि तुम्हें यह नाम अच्छा न लगे, तो मुझे नीलमणि कह सकते हो। लेकिन मैं हूँ शूर्पणखा—इसे सच मानो।

राम : मान लिया—तुम्हारा नाम शूर्पणखा है।

शूर्पणखा : मैं दण्डकारण्य की रानी हूँ। जिस धरती पर तुम खड़े हो, वह मेरे राज्य में है।

राम : तुम दण्डकारण्य की रानी हो ? कदाचित् यह कहने आयी हो कि मैं तुम्हारे राज्य की सीमा से बाहर चला जाऊँ।

शूर्पणखा : इतनी शीघ्रता में ऐसा निष्कर्ष मत निकालो। अभी मेरा परिचय अधूरा ही सुना है तुमने।

राम : ठीक है, अपना पूर्ण परिचय दो।

शूर्पणखा : तुमने रावण का नाम सुना होगा। यहाँ से सुदूर दक्षिण में महा-समुद्र के बीच है सोने की लंका। वह रावण लंका का सम्राट् है। उसी भुवनविजयी रावण की बहन हूँ मैं। यहाँ मेरे साथ राक्षसों की एक विशाल सेना है जिसके सेनापति हैं खर और दूषण। वे सब मेरे सेवक हैं।

राम : शूर्पणखा, मेरा सौभाग्य है कि तुमने स्वयं आकर मुझे दर्शन दिये। —तुम्हारे आने का प्रयोजन क्या है?

शूर्पणखा : मेरे मुख से वह बात नहीं निकलती राम।

राम : फिर मैं तुम्हारी इच्छा कैसे पूरी करूँ?—यहाँ, एकाकी, मेरे आश्रम में आने का तुम्हारा क्या प्रयोजन है? शीघ्र बताओ।

शूर्पणखा : राम, मैं जब किशोरी थी तो अचानक एक दानवकुमार से मुझे प्रेम हो गया, उसने प्रेमाभिभूत हो अपने रक्त का टीका लगाकर मुझे अपनी पत्नी के रूप में स्वीकार कर लिया। रक्त का टीका सूखा भी नहीं कि मेरे बड़े भाई रावण ने उसका वध कर दिया। फिर मैं दण्ड-कारण्य चली आयी। मैं धीरे-धीरे उस घटना को भूलने लगी।

राम : तो तुम विधवा हो? तुमने पति सुख को जाना ही नहीं।

शूर्पणखा : हाँ राम, मैं वनों में स्वच्छन्दभाव से घूमने लगी। माया का अभ्यास करने लगी। प्रकृति से शक्ति का संचय करने लगी। मैं कोई भी रूप धारण कर सकती हूँ। आकाशमार्ग से कहीं भी जा सकती हूँ। किसी भी वीर से युद्ध कर सकती हूँ। —इसी क्रम में जब मैं वन में घूम रही थी तो अकस्मात् तुम पर दृष्टि पड़ी। लगा कि जिस जल की तृषा से प्यासी मैं संसार में चक्कर लगा रही थी, वह मेरे पास ही है। उद्दाम यौवन से आक्रान्त, वासना से अभिभूत, मैं तुम्हारे चरणों के निकट, अनजाने, आकर खड़ी हूँ। मुझे सहारा दो।

राम : शूर्पणखा, तुम महाबलशाली रावण की बहन हो—क्या सच कहती हो?

शूर्पणखा : मुनिश्रेष्ठ पुलस्त्य के पुत्र विश्रवा ऋषि की पुत्री हूँ मैं। इस तरह उच्च ब्राह्मण वंश में मेरा जन्म हुआ है। मुनि विश्रवा के ही पुत्र कुबेर हैं। वे भी मेरे भाई हैं।

राम : मैं तुम्हारा अभिप्राय समझ गया। तुम श्रेष्ठ सुन्दरी हो। सर्वगुण सम्पन्न हो। मुनि विश्रवा की पुत्री और कुबेर तथा रावण की बहन हो। विधवा होकर यदि तुम विवाह करना चाहती हो तो उन्हें क्यों नहीं कहतीं कि वे तुम्हारे योग्य वर ढूँढ़ दें?

शूर्पणखा : तुमसे बढ़कर योग्य वर और कौन मिलेगा? मेरे चुनाव से मेरे पिता और भाइयों को सन्तोष ही होगा। तुम केवल अपनी स्वीकृति दे दो। शेष कार्य मुझ पर छोड़ दो।

राम : शूर्पणखा, मैं विवाहित हूँ। मेरी पत्नी साथ में है। इसलिए मैं तुमसे विवाह नहीं कर सकता। हाँ, मेरा भाई लक्ष्मण मेरे साथ है। वह गौर-वर्ण का है, वीर है, उसकी पत्नी उसके साथ नहीं आयी है। चाहो तो उससे बातें कर सकती हो।

शूर्पणखा : राम, तुम्हारी पत्नी साथ में है। उससे मुझे ईर्ष्या नहीं होगी। मैं तुम्हारी सेवा करूँगी। तुम्हारी रणयात्रा में सहायता प्रदान करूँगी। मेरी माया के सामने कोई वीर तुम्हारे सामने टिक न सकेगा। यह भी जान लो कि रावण भाई होने पर भी मेरा शत्रु है। उसने मेरे पति का निर्दयता से वध किया है। यदि चाहोगे तो मेरी सहायता से तुम रावण को पराजित करके लंका के सम्राट् हो सकते हो। त्रिभुवन-विजयी हो सकते हो।

राम : देवी, मुझे क्षमा करो। देखो, मेरा भाई लक्ष्मण आ रहा है। उससे बातें करो। मेरी पूजा का समय व्यतीत हो रहा है। मुझे जाने दो।

[प्रस्थान। दूसरी ओर से लक्ष्मण का प्रवेश। शूर्पणखा और लक्ष्मण एक-दूसरे को आश्चर्य से देखते हैं।]

शूर्पणखा : क्या तुम्हारा नाम लक्ष्मण है?

लक्ष्मण : हाँ। तुम कौन हो?

शूर्पणखा : मेरा नाम शूर्पणखा है। मैं इस दण्डकारण्य की रानी हूँ। मुनि

विश्रवा मेरे पिता और कुबेर तथा रावण मेरे भाई हैं।

लक्ष्मण : यहाँ आने का कारण ?

शूर्पणखा : कामदेव के समान श्यामल राम को देखकर मैं मोहित हो गयी। प्रणय-निवेदन किया। राम ने कहा कि उसकी पत्नी साथ है। —तुम वन में पत्नी को नहीं लाये। राम का आदेश है कि तुम मेरे साथ विवाह कर लो।

लक्ष्मण : देवी, मैं घर से राम और सीता की सुरक्षा के लिए चला हूँ, विलास के लिए नहीं। इसलिए मेरे साथ तुम्हारा विवाह असम्भव है।

शूर्पणखा : लक्ष्मण, तुम मुझे केवल रति-अवतार ही नहीं समझो। सौन्दर्य में, माया में, विक्रम में, रणनीति में, धन-सम्पत्ति में मैं अद्वितीय हूँ। मुझे स्वीकार कर लो।

लक्ष्मण : शूर्पणखा, मैं राम का दास हूँ। मैं नहीं चाहता कि मुझसे विवाह करके तुम किसी की दासी बनो। इसलिए क्षमा करो। दण्डकारण्य की रानी को यह शोभा नहीं देता कि प्रेम की आँधी में वह अपनी मर्यादा को खो दे।

[राम और सीता का पुनः प्रवेश। सीता और शूर्पणखा एक-दूसरे की तरफ ध्यान से देखती हैं। सीता की आँखों में भय है, शूर्पणखा की आँखों में ईर्ष्या। राम मुस्कुराते हैं।]

शूर्पणखा : (राम से) क्या यही तुम्हारी पत्नी हैं ?

राम : हाँ, यही मेरी पत्नी सीता हैं—मिथिलानरेश जनक की कन्या—अब तो तुम्हें मेरे कहने पर विश्वास हुआ।

शूर्पणखा : लक्ष्मीसदृश्य रूप ! आभरण-विहीन शरीर ! फिर भी सूर्य की आभा से परिपूर्ण ! नेत्रों से मानो करुणा का सागर प्रवाहित हो रहा हो ! नहीं नहीं, यह मानवी नहीं, दानवी है। राम, यह स्त्री तुम्हें अपने कपटजाल में बाँध रही है। इससे दूर रहो।

राम : कैसी बातें करती हो शूर्पणखा ? यह तुम्हारी तरह अपरिचिता नहीं है। हम दोनों के विवाह के तो कई वर्ष व्यतीत हो गये। सीता देवी हो सकती है, दानवी नहीं।

शूर्पणखा : यह प्रवंचना है, मायाविनी है।

राम : शूर्पणखा, लक्ष्मण ने तुम्हें क्या कहा ?

शूर्पणखा : लक्ष्मण ने भी मेरी प्रार्थना पर ध्यान नहीं दिया। बताओ राम, अब मैं क्या करूँ ? कहाँ जाऊँ ?

राम : शूर्पणखा, तुममें अदम्य शक्ति है, लेकिन विवेक का अभाव है।

शूर्पणखा : (दाँत पीसकर) राम और लक्ष्मण, सुन लो। तुमने शूर्पणखा के अनुनय-विनय को देख लिया। अब तुम उसके क्रोध को देखो। सीता मेरी कामनापूर्ति में बाधक है। अब मेरी राक्षसवृत्ति जागृत हो गयी है। मैं इसका वध करूँगी। इसके अरुण रक्त को अँजुलि में भर कर पान करूँगी।

[कहती हुई अपनी अँगुलियों की ओर भयानक भाव से देखती है। नेत्रों में प्रतिहिंसा। वह धीरे-धीरे सीता की ओर बढ़ती है। सीता चीत्कार करती है।]

राम : (चिल्लाकर) लक्ष्मण !

[लक्ष्मण शीघ्रता से आगे बढ़कर शूर्पणखा के आगे खड़े हो जाते हैं।]

लक्ष्मण : राक्षसी ! आगे मत बढ़ो।

शूर्पणखा : तुम सामने आ गये ? तो लो, पहले तुम्हीं मृत्यु का आलिंगन करो।

[शूर्पणखा अपने पँजों से लक्ष्मण की गर्दन जकड़ना चाहती है। तत्काल लक्ष्मण कटार निकालकर उस पर आघात करते हैं। वह घायल हो जाती है। 'बचाओ' 'बचाओ' चिल्लाती हुई चली जाती है।]

सीता : लक्ष्मण, भाई, तुमने उस राक्षसी से मेरे प्राण बचाये हैं।

लक्ष्मण : देवी, मैं तो स्वयं उसके पंजों के बीच आनेवाला था। लेकिन राम की कृपा से सब कुछ ठीक हो गया।

राम : लक्ष्मण, शूर्पणखा चुपचाप न रहेगी। लगता है, वह फिर कुछ उपद्रव खड़ा करेगी। हम सबको सावधान रहना चाहिए।

लक्ष्मण : उसने अभी-अभी बताया है कि उसकी एक विशाल सेना दण्डकारण्य में रहती है। सम्भव है, इस बार राक्षसों का सामूहिक आक्रमण हो।

राम : इसलिए हम दण्डकारण्य तब तक नहीं छोड़ेंगे जब तक इन राक्षसों का यहाँ समूल नाश नहीं हो जाता और ऋषियों के भय का कारण दूर नहीं हो जाता।

सीता : शूर्पणखा समझती है कि उसके मार्ग का काँटा मैं हूँ।

राम : उसका यह समझना स्वाभाविक है सीते!

[नेपथ्य में रणघोष]

लक्ष्मण : मेरा अनुमान सही निकला। देखिए उस ओर। आकाश धूल से भर गया है। राक्षसों का रणघोष हो रहा है। यह शूर्पणखा की सेना है। भैया युद्ध के लिए कटिबद्ध हो जाइये। भयंकर युद्ध की सम्भावना है।

राम : लक्ष्मण, चिन्ता मत करो। तुम देवी सीता के साथ रहो। मैं अकेला उनसे युद्ध करने जाता हूँ।

लक्ष्मण : नहीं भैया, आपके आशीर्वाद से मैं अकेला उन लोगों के लिए यथेष्ट हूँ। आप देवी के साथ यहीं रहें। मैं जाता हूँ।

राम : नहीं लक्ष्मण, मेरा आदेश है। तुम यहीं रहो। किसी भी दशा में इस स्थान का परित्याग न करो। सम्भव है, शूर्पणखा यहाँ आकर कुछ और माया रचे। इसलिए तुम न जाओ। मैं जाता हूँ।

[प्रस्थान। रणघोष निकटतर। 'मारो', 'मारो', 'आह-आह' की आवाज। रणघोष चलता रहता है। लक्ष्मण उधर देखते रहते हैं। सीता प्रार्थना करती है।]

सीता : माँ पार्वती, जब-जब मैं कष्ट में रही, तुमने मेरी सहायता की। आर्यपुत्र अकेले असंख्य राक्षसों से युद्ध कर रहे हैं। भगवान शंकर उनकी

सहायता करें—इनका उत्तरदायित्व तुम पर है। उन्हें विजय प्रदान करो माँ।

लक्ष्मण : आर्य राम का युद्धकौशल देखते बनता है। उनके बाण से आहत होकर राक्षस सैनिकों की संख्या में न्यूनता हो रही है। भयंकर राक्षस खून से लथपथ हो रहे हैं और बाण की मार से चीत्कार कर रहे हैं। —लो अब शेष राक्षस भागने लगे।—राम उनका पीछा कर रहे हैं। एक साथ सैकड़ों बाण आकाश में नृत्य करके राक्षसों के शरीर में घुस रहे हैं।— अब कोई शत्रु दिखायी नहीं पड़ता। अकेले राम उनके शवों के बीच खड़े हैं। लगता है, सहस्र सूर्य की ज्वाला उनके शरीर से निकल रही है। वे इधर ही लौट रहे हैं। देवी, विजयी राम की अभ्यर्थना करो।

[राम का प्रवेश। उनके शरीर में जहाँ-तहाँ रक्त लगा है। लक्ष्मण और सीता उनके चरण छूते हैं। सीता अपने आँचल से रक्त पोंछती है। फिर भावविह्वल होकर दोनों भाई आलिंगनबद्ध हो जाते हैं।]

राम : लक्ष्मण, सभी राक्षसों का संहार हो चुका। आज से दण्डकारण्य राक्षसों से मुक्त है। उनके उत्पात का अन्त हो गया।

लक्ष्मण : आपने अपने बाहुबल से उन पर विजय पायी है। दण्डकारण्य के मुनिगण आपके इस उपकार को कभी नहीं भूलेंगे। आपकी जय हो!

तृतीय दृश्य

स्थान—दण्डकारण्य का वही भाग

समय—दोपहर

[घायल शूर्पणखा और महाराज रावण बातें कर रहे हैं।]

रावण : शूर्पणखा, तुम्हारी बातों से मेरा रक्त उष्ण हो उठा है। एक बार फिर उस घटना का वर्णन करो।

शूर्पणखा : (रोती हुई) रावण, तुम्हारी दुलारी बहन का अपमान हुआ है। मेरी दशा देखो।—इसका प्रतिशोध लो या मुझे आत्महत्या करने की अनुमति दो। नहीं जानती थी कि दण्डकारण्य में तुमने मेरे लिए शत्रु पाल रखे हैं। ओह! मेरी रक्षा में खर, दूषण, त्रिशिरा आदि अनेक वीर सैनिकों के प्राण गये।

रावण : किसने वध किया उनका?

शूर्पणखा : मूढ़ रावण, तुम्हारे राज्य में, तुम्हारे विरुद्ध, कैसा भीषण षड्यन्त्र चल रहा है और तुम अभी तक अनभिज्ञ हो! कैसे तुम अपने साम्राज्य का शासन देखते हो, जब तुम्हें इतने बड़े काण्ड की कोई सूचना नहीं है? कहाँ हैं तुम्हारे चापलूस दूत जो तुम्हारा यशोगान गाया करते हैं?

रावण : मैं पूछता हूँ कि किसने हमारे इन वीर योद्धाओं का वध किया?

शूर्पणखा : राम ने।

रावण : राम कौन?

शूर्पणखा : राम अयोध्या का निर्वासित राजकुमार है। उसके साथ उसका

कुटिल भाई लक्ष्मण है जिसने मुझे घायल किया।

रावण : उन दोनों के साथ और कौन है?

शूर्पणखा : एक नारी—राम की पत्नी सीता।—उसी के कारण तो मेरा यह हाल हुआ। मैं तुम्हारे लिए उस राम के पास गयी थी। क्या जानती थी कि उस सीता के कारण मेरी दुर्दशा होगी।

रावण : सीता में कौन-सा आकर्षण है?

शूर्पणखा : सीता संसार की सर्वश्रेष्ट सुन्दरी है। लगता है, साक्षात् लक्ष्मी मानवी का रूप धारण करके अवतरित हुई है। तुम त्रिभुवनविजयी हो, लेकिन तुम्हारे रनिवास में सीता के समान एक भी स्त्री नहीं है। इसीसे मैं राम के पास गयी ताकि सीता को छल से, बल से या कौशल से हरण करके तुम्हारी सेवा में अर्पित कर दूँ। सच कहती हूँ रावण, उस मोहिनी नारी के अभाव में तुम्हारी लंका सूनी है। उसके लिए कोई भी सम्राट् अपने समस्त साम्राज्य को दाँव पर लगा सकता है। खेद है, मेरा प्रयत्न विफल सिद्ध हुआ।

रावण : यदि तुम समझती हो कि सीता का उपयुक्त स्थान मेरे रनिवास में है तो मैं सीता का हरण करूँगा, लेकिन तुम्हारे अपमान का प्रतिशोध कैसे ले सकूँगा?

शूर्पणखा : राम को बन्दी बनाकर मेरे चरणों के आगे न्यायविचार के लिए प्रस्तुत करो। मुझे विश्वास है कि सीता के वियोग में राम की शक्ति क्षीण हो जायेगी और वह युद्ध नहीं कर पायेगा।

रावण : शूर्पणखा, मुझे वर्षों पहले की एक घटना स्मरण है। जनकपुर में सीता का स्वयंवर हो रहा था। तब सीता किशोरी थी। शिवधनुष भंग करने के लिए अनेक राजे-महाराजे उपस्थित थे। मैं भी उपस्थित था। उस शिवधनुष को कोई भी उठा तक न सका। मैं भी असफल रहा। राम ने शिवधनुष भंग किया। सीता ने वरमाल उसके गले में डाल दी।—लगता है, यह वही राम है। यदि वही है तो निश्चय ही वह महावीर है और सीता तो अब पूर्ण युवती हो गयी होगी।

शूर्पणखा : लगता है, तुम राम से भयभीत हो।

रावण : भयभीत नहीं हूँ। लेकिन खर-दूषण आदि वीरों का उसने वध किया

है—यह जानकर चकित अवश्य हूँ।

शूर्पणखा : जिसके बल विक्रम के सम्मुख देवगण झुकते हैं, जिसने अपने पुरुषार्थ से कुबेर का पुष्पक-विमान छीन लिया, जो माया का आचार्य है, जिसके पिता मुनि विश्रवा हैं; जिसका भाई कुम्भकर्ण है, जिसका पुत्र इन्द्रजीत मेघनाद है, जिसकी कनकलंका समुद्र की जलराशि से घिरी है, जो एक क्षण में आकाश-पाताल का भ्रमण कर सकता है, जिसने अपने मस्तक की बलि देकर भगवान शिव से अमरत्व का वर पाया है, वह लंकेश्वर रावण आज एक निर्वासित, सैन्य-विहीन, तरुण से भय खा रहा है? आश्चर्य है!

रावण : शूर्पणखा, मुझे अधिक उत्तेजना न दो। प्रतिज्ञा करता हूँ कि मैं सीता का हरण करूँगा, राम से युद्ध करूँगा। तुम्हारे अपमान का बदला लूँगा। मारीच आ रहा है, उससे आवश्यक मन्त्रणा करूँगा। तुम जाओ।

शूर्पणखा : रावण, तुममें असीम साहस है, महान् पुरुषार्थ है, तुम अजेय हो, अमर हो—इसे कभी मत भूलो।—मैं जाती हूँ।

[प्रस्थान]

रावण : सीता! जनक कन्या! विश्व की सर्वश्रेष्ठ सुन्दरी! राम की पत्नी! —क्या?—नहीं-नहीं, अवश्य कुछ करना होगा। नीलमणि ने ठीक ही कहा है कि वैसी नारी की प्राप्ति के लिए साम्राज्य को भी दाँव पर लगाया जा सकता है।—लो, मारीच आ गया।

[मारीच का प्रवेश। सिर पर जटाजूट है। तपस्वी का वेष। आकर रावण को प्रणाम करता है।]

मारीच : सेवक मारीच लंकेश्वर को प्रणाम करता है।

रावण : मारीच, यह क्या? ऐसा परिवर्तन? राक्षसी ताड़का का पुत्र और महाबली सुबाहु का भाई राक्षस मारीच तपस्वी के वेष में?

मारीच : इसके पीछे एक कथा है सम्राट्। पहले आप आदेश दें कि सेवक का अकस्मात् आपने स्मरण क्यों किया है।

रावण : मारीच, मैंने एक आवश्यक कार्य के लिए तुम्हें बुलाया है। मैं जानता हूँ, तुम उसे कर सकोगे।

मारीच : यदि आप समझते हैं कि मैं उस काम को कर सकूँगा तो आदेश दीजिये कि मुझे क्या करना है।

रावण : सामने की कुटी में एक सुन्दर नारी रहती है। तुम्हें स्वर्णमृग बन कर उसके पास जाना होगा ताकि वह तुम्हारी सुन्दरता को देखकर अपने पति को तुम्हें लाने के लिए कहे, उसका पति तुम्हारे पीछे-पीछे जायेगा। काफी दूर जाने पर तुम्हें उसके पति के स्वर में उसके पति के भाई को बुलाना होगा। बस, काम इतना ही है। शेष मुझे करना है।

मारीच : कौन है उस नारी का पति?

रावण : एक निर्वासित युवक। उसका नाम है राम।

मारीच : (भयभीत स्वर में) राम?—कौन राम?

रावण : अयोध्या का राजकुमार जो अपनी पत्नी सीता और भाई लक्ष्मण के साथ यहीं ठहरा है। लेकिन तुम्हारा चेहरा रक्तहीन क्यों हो गया? —तुम अवाक् भाव से मेरी ओर देख क्यों रहे हो?—मारीच, क्या हो गया तुम्हें?

मारीच : सम्राट्, कैसे व्यक्त करूँ मैं अपनी पीड़ा को जिससे वर्षों से मैं ठीक से सो नहीं सका हूँ। कैसे व्यक्त करूँ हृदय में स्थित अपने भय को जिसने मुझे अर्द्धमृत बना रखा है?

रावण : मैंने कुछ समझा नहीं।

मारीच : कई वर्ष पूर्व की बात है। आपकी आज्ञा से मेरी माँ ताड़का नैमिषारण्य में रहती थी। सुबाहु और मैं—दोनों उसके साथ रहते थे। आपके आदेशानुसार हम तीनों उस वन के ऋषियों को सताते, उनके यज्ञ में विघ्न डालते। पता नहीं किधर से एक दिन मुनि विश्वामित्र दो नवयुवकों को साथ लेकर पधारे और यज्ञ प्रारम्भ हो गया। यज्ञ के धुएँ की सुगन्ध को पाकर हम तीनों माँ-बेटे विघ्न डालने आकाश-मार्ग से वहाँ पहुँच गये। लेकिन राम के एक ही बाण ने मेरी माँ

के प्राण ले लिए। दूसरे वाण से भाई सुवाहु का प्राणान्त हो गया। तीसरा वाण मुझे लगा। मैं मरा नहीं, लेकिन दूर जाकर गिर गया। मैं उनसे इतना डर गया कि नैमिषारण्य से उसी दिन हट गया।

रावण : कापुरुष !

मारीच : नहीं लंकेश, मारीच कापुरुष नहीं था, आज भले है। मैं अपनी माँ की चीत्कार और भाई के रक्त को भूला नहीं हूँ। प्रतिहिंसा की ज्वाला में जलता रहा और इस अवसर की प्रतीक्षा में रहने लगा कि इन दोनों भाइयों से—राम और लक्ष्मण से—बदला लूँ। ये निर्वासित होकर वन में आये। मैं इनके पीछे लग गया। एक समय जब ये वेसुध थे, मैंने उचित अवसर पाकर इन पर आक्रमण कर दिया। लेकिन दूसरे ही क्षण एक तीखा वाण मेरे मर्म को भेदता हुआ निकल गया और मैं आहत होकर समुद्रतीर पर जा गिरा।

रावण : इतना कुछ हो गया, लेकिन तुमने मुझे कभी कुछ सूचित नहीं किया।

मारीच : सम्राट, राम के भय ने कुछ करने नहीं दिया। मुझे हर जगह राम दिखायी पड़ता है, हर क्षण मृत्यु का भय दिखायी पड़ता है, और यही कारण है कि मैं तपस्वी के रूप में रहता हूँ। मैं राक्षसवृत्ति को भी भूल गया हूँ।

रावण : तुम्हारा भय व्यर्थ है मारीच। इस तपस्वी के वेश को छोड़ दो और अपनी माँ और अपने भाई की हत्या का बदला लो। रावण तुम्हारे हर काम में सहयोग देगा।

मारीच : सम्राट्, यदि आप मेरा परामर्श मानें तो राम से शत्रुता न ठानें। मुझे विश्वास हो गया है कि वे मानव के वेश में ईश्वर हैं और इस भूतल पर पाप का विनाश करने आये हैं।

रावण : मैं राम को ईश्वर नहीं मानता। मैंने ब्रह्मा और शिव की शक्ति को देखा है। तुम शायद नहीं जानते कि जब मेरा विजयरथ संसार के कोने-कोने में दौड़ रहा था तो मैं युद्ध करने के लिए विष्णुलोक भी गया। लेकिन विष्णु ने युद्ध करना अस्वीकार कर दिया। तब से मैं उसे भी कुछ नहीं समझता। यदि राम ईश्वर का अवतार होता तो उसे साधारण मनुष्य की तरह वनों के कष्ट नहीं सहने पड़ते। स्पष्ट है कि राम ईश्वर नहीं है।

मारीच : नहीं महाराज, राम में अपूर्व शक्ति है। किसी साधारण व्यक्ति में ऐसा साहस दुर्लभ है कि वह ताड़का और सुवाहु का वध कर सके। आप तो जानते हैं कि मेरी माँ माया जानती थी, उसके शरीर में असीम बल था।—सुना है, राम ने पाषाण का स्पर्श करके शापभ्रष्टा अहिल्या का भी उद्धार किया है। महाराज, मेरा आग्रह है कि आप राम को अपना शत्रु न बनायें, सीताहरण की इच्छा त्याग दें और मुझे इस पापकर्म में न घसीटें। मैं भविष्य के काले पर्दे को चीरकर देख रहा हूँ—यदि आपने ऐसा किया तो सारी लंका नष्ट हो जायेगी, आपका सारा परिवार···

रावण : बन्द करो व्यर्थ का भाषण।—मारीच, तुम मेरे दास हो। मैंने तुम्हारी माँ को आश्रय दिया था। इसे मत भूलो। आज मुझे तुम्हारी आवश्यकता है। मेरी सारी योजना तैयार है।—राम ने मेरी बहन का अपमान किया है। मैं उसे यों नहीं छोड़ सकता। यह भी सुन लो—यदि तुम मेरे आदेश का पालन नहीं करोगे तो मेरे हाथों अभी, इसी क्षण, तुम्हारी मृत्यु होगी। सोच लो—क्या चाहते हो ?—मेरे आदेश का पालन या मेरे हाथों अपनी मृत्यु ?

मारीच : लंकेश, एक बार फिर···

रावण : (**ऊँचे स्वर में**) उत्तर दो मारीच।

मारीच : ठीक है, आपके आदेश का पालन करूँगा।

रावण : उत्तम !—यही तुम्हारे योग्य उत्तर है मारीच।

मारीच : महाराज रावण, आपने अग्नि तैयार कर दी है। मैं उसमें ईंधन का काम करूँगा। जब मरना ही है तो राम के बाण से क्यों न मरूँ ? लेकिन एक बात कहे जाता हूँ कि मेरे शरीर के ईंधन से प्रज्ज्वलित इस भीषण आग को महासागर का समस्त जल भी न बुझा सकेगा। इस आग

की लाल लपट काल की जिह्वा के समान होगी और उसमें समस्त लंका, आपका परिवार और स्वयं आप भी भस्म हो जायेंगे।

[सवेग प्रस्थान। रावण का अट्टहास]

रावण : राम है ईश्वर का अवतार ! यदि यह सच भी हो तो मेरी एक और अतृप्त लालसा पूरी होगी और वह है विष्णु के साथ मेरा चिरप्रतीक्षित युद्ध। यदि विष्णु पराजित हुआ तो विष्णुलोक पर राक्षसों की रक्त-ध्वजा लहरायेगी और यदि मैं पराजित हुआ तो विष्णु के चरणों में मेरा स्थान होगा। लेकिन भुवनविजयी रावण की पराजय असम्भव है। मेरा लोहा तो ब्रह्मा और शिव भी मानते हैं, विष्णु तो नगण्य है। मेरी योजना के प्रथम चरण में है मारीच का स्वर्णमृग बनना। उसके पश्चात्—ओह ! अब दूर से आगे के दृश्य को देखना है।

[अट्टहास करते प्रस्थान। शूर्पणखा का प्रवेश]

शूर्पणखा : रावण ! मैंने तुम्हारी और मारीच की बातें सुन ली हैं। स्पष्ट है कि तुम्हारा प्रथम ग्रास होगा मारीच ! तुमने मेरी लहलहाती आशा-लता पर तुषारपात किया है। मेरे नवांकुरित प्रेम को जला डाला है। मेरे निर्दोष और भोले पति विद्युत का वध किया है।—आज भी उस तरुण का रक्ताक्त छटपटाता शरीर मेरे नेत्रों के सामने नाच रहा है। मेरा अतीत बार-बार मुझे तुमसे प्रतिशोध लेने के लिए उत्तेजित कर रहा है। वासना का दमन करके मैं इतने वर्षों तक जीवित रही। चाह कर भी मर न पायी। पता नहीं कैसे, मेघवर्ण के समान उस तरुण राम को देखकर मैं मोहित हो गयी। वर्षों से बँधी वासना के उद्वेग ने मेरे मन-प्राण को चंचल कर दिया। लेकिन वहाँ भी मुझे अपमान ही मिला।—रावण, तुम्हारे मन में मैंने सीता के रूप को अंकित कर दिया है।—वह मिट नहीं सकता। तुम सीता का हरण करोगे तो राम मेरे चरणों का दास बनकर रहेगा और यदि तुमने उसका हरण नहीं किया

तो फिर मुँह न दिखा सकोगे।—सामने राम आ रहा है। अब मैं यहाँ से हट जाऊँ !

[प्रस्थान। दूसरी ओर से राम, सीता और लक्ष्मण का प्रवेश।]

राम : सीते, तुम अपने लोभ का परित्याग करो।

लक्ष्मण : देवी, वह स्वर्णमृग नहीं, मायामृग है।

सीता : आर्यपुत्र, खेद है कि आप मेरा निवेदन सुनना नहीं चाहते। मैंने अब तक आपसे कुछ नहीं माँगा है। आज एक सामान्य वस्तु माँग रही हूँ तो आप अस्वीकार करते हैं।

राम : (हँसकर) भला सीता को किस चीज की आवश्यकता है ?

सीता : स्वर्णमृग जो सामने घास पर घूम रहा है। उसकी चमक तो देखिये। सूर्य की किरणें उसे और भी आलोकित कर रही हैं। उस पर दृष्टि नहीं ठहरती। वनवास की अवधि पूरी होने पर मैं उसे अयोध्या ले जाऊँगी। वह आपके राजमहल की शोभा बढ़ायेगा।

लक्ष्मण : देवी, यह मृग वैसा नहीं है जैसा आप देख रही हैं। अवश्य यह किसी राक्षस की माया है। आप इसका लोभ त्याग दें।

राम : लक्ष्मण ठीक कहता है देवी।

सीता : आर्यपुत्र ठीक कहते हैं और लक्ष्मण भी ठीक कहते हैं। केवल मैं ठीक नहीं कह रही हूँ। मैंने आज तक अपनी कोई इच्छा व्यक्त नहीं की और आज जब मैं पहली बार कुछ माँग रही हूँ तो आप देना नहीं चाहते।

राम : कौन कहता है कि मैं कुछ देना नहीं चाहता ?

सीता : मैं कहती हूँ।

राम : सीता, एक बार फिर सोच लो

सीता : सोच लिया है आर्यपुत्र। मुझे कुछ नहीं चाहिये। कुछ नहीं चाहिये।

[स्वर अवरोध]

राम : सीता, तुम रो रही हो ? स्वर्ण-प्राप्ति का लोभ मनुष्य को गर्त्त में गिराता है। —कदाचित् तुम इससे अनभिज्ञ हो। आँसू नारी की अपूर्व शक्ति है और पुरुष पर विजय प्राप्त करने का सबसे बड़ा अस्त्र। क्यों लक्ष्मण ?

लक्ष्मण : देवी का रुदन बन्द नहीं हुआ। इसलिए परिणाम जो भी हो स्वर्ण-मृग के पीछे मुझे जाने का आदेश दीजिए।

राम : क्या कहते हो लक्ष्मण ? अनावश्यक रूप से उस मायामृग के पीछे दौड़ना क्या उचित होगा ?

लक्ष्मण : देवी के मन को दुखाना ठीक नहीं। इसलिए उचित-अनुचित के विचार का परित्याग कीजिये। इस स्वर्णमृग को, जीवित या मृत, देवी के निकट लाना ही होगा।

राम : तो वही हो। सीता के व्यंग शब्द मेरे लिए थे। इसलिए यह काम मुझे ही करना होगा। लक्ष्मण, तुम सीता की रक्षा करो। किसी भी दशा में इसे अकेली छोड़कर इधर-उधर मत जाना। मैं स्वर्णमृग के पीछे जाता हूँ।

लक्ष्मण : स्वर्णमृग तो दृष्टि से ओझल हो गया भैया।

राम : नहीं, वह उस पेड़ की ओट में छिप गया है। सावधान लक्ष्मण ! मैं उसके पीछे-पीछे भागता हूँ।

[प्रस्थान]

लक्ष्मण : भैया स्वर्णमृग के पीछे-पीछे दौड़ रहे हैं। देवी, मेरा मन कहता है कि वह मायामृग है, किसी राक्षस की माया है।

सीता : यदि वह राक्षस है तो आर्यपुत्र के हाथों उसका वध होगा। यह भी एक पुण्यकार्य होगा।

लक्ष्मण : (दूर से देखते हुए) क्षणमात्र में वह हिरण कितनी दूर चला गया। राम उसके पीछे दौड़ रहे हैं। लक्ष्य साधते हैं और वह ओझल हो जाता है। लो, अब न राम दिखायी पड़ते हैं, और न वह मृग। लगता है, बहुत दूर निकल गये।

मारीच : (बहुत दूर से राम के स्वर में) लक्ष्मण शीघ्र आओ !

सीता : यह क्या ? यह तो आर्यपुत्र का स्वर है। कदाचित् वे विपत्ति में हैं।

लक्ष्मण : नहीं, यह उनका स्वर नहीं है। उसी स्वर्णमृगरूपी राक्षस का स्वर है।

सीता : कैसी बातें करते हो लक्ष्मण ? जिस स्वर को मैं प्रतिदिन सुनती हूँ, उसको पहचानने में मैं भूल नहीं कर सकती।

लक्ष्मण : उस स्वर को मैं भी पहचानता हूँ देवी। उस राक्षस ने अवश्य हम लोगों को भ्रम में डालने के लिए राम के स्वर का अनुसरण किया है।

सीता : भाई लक्ष्मण, आर्यपुत्र संकट में हैं। तुम शीघ्र जाकर उनकी सहायता करो।

लक्ष्मण : जिस रामचन्द्र ने अकेले ही खर-दूषण समेत उनकी असंख्य राक्षस-सेना का देखते-देखते संहार किया, उस पर भला कौन-सा संकट आ सकता है ?

सीता : लक्ष्मण, मेरी भूल को क्षमा करो। मेरे कारण आर्यपुत्र संकट में पड़ गये हैं। मेरी प्रार्थना है, तुम जाकर उनकी सहायता करो।

लक्ष्मण : उन्होंने मुझे यहीं रहने का आदेश दिया है। आपको अकेली छोड़कर मैं नहीं जा सकता।

सीता : (सक्रोध) लक्ष्मण, आज तुम्हारा असली रूप देख रही हूँ। उस माया-मृग के पीछे स्वयं न जाकर तुमने आर्यपुत्र को जाने दिया। उन्हें संकट में देखकर भी तुम उनकी सहायता नहीं करना चाहते। अब तक तुमने जिस भक्ति और स्नेह का परिचय दिया, वह सब झूठ था। तुम उनका मरण चाहते हो।

लक्ष्मण : (चौंककर) बस करो देवी। लक्ष्मण के प्रति आपके ऐसे कुविचार होंगे—यह मेरी कल्पना के परे है। —मैं राम का मरण चाहता हूँ ! कैसे इस वाक्य को आपने उच्चरित किया। हे भगवन् !—क्या करूँ ? —क्या देवी को अकेली छोड़कर मैं उधर जाऊँ ?—और इधर कहीं

देवी पर कोई विपत्ति आयी तो राम को क्या उत्तर दूंगा ?

सीता : मेरी चिन्ता छोड़ दो लक्ष्मण । यदि आर्यपुत्र से तुम्हें तनिक भी मोह है तो मुझे छोड़कर उनके पास जाओ ।

लक्ष्मण : (नेत्रों में नीर) जाता हूँ देवी । नियति का खेल अभी बाकी है । मैं एक रेखा खींच देता हूँ । मेरी अनुपस्थिति में इस लक्ष्मण-रेखा का किसी भी दशा में उल्लंघन न करें । इस रेखा के भीतर आप सुरक्षित रहेंगी ।

[मन्त्र पढ़कर तीर से एक रेखा खींच देते हैं । फिर प्रणाम करके चले जाते हैं । सीता चुपचाप उधर देखती रहती है । कुछ देर बाद—]

रावण : (दूर से) भिक्षां देहि ! —भिक्षां देहि !

[साधु के वेष में रावण का प्रवेश]

रावण : भिक्षां देहि !

[रावण की नजर सीता पर पड़ती है । वे सबकुछ भूलकर एकटक देखते रहते हैं ।]

सीता : महात्मा, आप कौन हैं ? इस घनघोर वन में आपको पहले तो कभी नहीं देखा ।

रावण : देवी, मैं ब्राह्मण हूँ, सभी वेद और शास्त्रों का ज्ञाता हूँ । घूम-घूमकर भिक्षाटन करता हूँ ।

सीता : यदि आपको आपत्ति न हो तो यहाँ विश्राम कीजिए । मेरे पति आखेट पर गये हैं । वे शीघ्र आयेंगे । आपसे मिलकर उन्हें प्रसन्नता होगी ।

रावण : इन घनघोर वन में रात्रि की शुभ्रज्योत्स्ना के समान तुम कौन हो ?

सीता : मैं अयोध्या-नरेश स्वर्गीय दशरथ की कुलवधू हूँ । श्रीरामचन्द्र मेरे पति हैं । मैं मिथिला-नरेश जनक की कन्या हूँ । मेरे पति माता की

आज्ञा से चौदह वर्षों के लिए वनवास कर रहे हैं ! मैं उनके साथ आयी हूँ । मेरे पति के भाई लक्ष्मण भी साथ आये हैं ।

रावण : क्या नाम है तुम्हारा ?

सीता : सीता ।

रावण : सुन्दर ! सीता, मुझे आश्चर्य है कि तुम्हें अकेली छोड़कर वे दोनों तरुण आखेट पर निकले हैं । इस वन में हिंसक पशु रहते हैं । यहाँ राक्षसों का राज्य है । दुःख है कि तुम अकेली हो । क्या तुम्हें भय नहीं लगता ?

सीता : सामने है लक्ष्मणरेखा । कोई जीव उस रेखा के इस पार आने का साहस नहीं कर सकता ।

रावण : देख रहा हूँ इस लक्ष्मण रेखा को । मुझे तो बड़ा भय लगता है ।

सीता : (कुछ हँसकर) आपके लिए भय का कोई कारण नहीं है ।

रावण : नहीं सीता, मैं दूसरे द्वार पर जाता हूँ । तुमसे भिक्षा नहीं मिलेगी ।

सीता : मेरे द्वार से भिक्षुक निराश होकर नहीं लौटता । उस पर आप विद्वान् ब्राह्मण हैं ।—आप ठहरें । मैं भिक्षा लेकर आती हूँ ।

[भीतर जाती है । रावण इधर-उधर देखते हैं कि कोई आ तो नहीं रहा है । एक पात्र में भिक्षा और पुष्प लिए सीता का पुनः प्रवेश]

सीता : निकट आइये ब्राह्मण । भिक्षा ग्रहण कीजिये ।

रावण : इस भिक्षा को स्वीकार नहीं कर सकता देवी ।

सीता : क्यों ?

रावण : उस रेखा के कारण वह भिक्षा बँधी है ।

सीता : लेकिन मैं उस रेखा को पार नहीं कर सकती ।

रावण : क्यों ?

सीता : ऐसा लक्ष्मण ने मुझे कह रखा है ।

रावण : कोई बात नहीं। मैं जाता हूँ। लगता है, आज मुझे उपवास करना होगा।

सीता : नहीं, यह तो मेरे लिए पाप होगा।

रावण : पाप और पुण्य का यदि तुम्हें इतना विचार है तो इधर आकर भिक्षा दो अन्यथा मुझे जाने की अनुमति दो।

सीता : अच्छी बात है। मैं रेखा पार करके आती हूँ। आप भिक्षा ग्रहण करें!

रावण : उत्तम!

[सीता रेखा पार करके भिक्षा देना चाहती है। अचानक रावण सीता का हाथ पकड़ लेते हैं। पात्र गिर जाता है। सीता डर जाती है।]

रावण : सुन्दरी, तुम अपनी कोमल काया क्यों वनवासी राम के साथ सुखा रही हो? तुम्हारा स्थान वन में नहीं, राजमहल में है। चलो मेरे साथ।

सीता : पापी ब्राह्मण, छोड़ो मेरा हाथ।

रावण : नहीं सुन्दरी, मैंने छोड़ने के लिए यह हाथ नहीं पकड़ा है।

सीता : ब्राह्मण, मेरे पति और देवर आते होंगे। उनसे तुम बच नहीं सकोगे।

रावण : जैसा सुना था, वैसा पाया। सुन्दर! अति सुन्दर! चलो मेरे साथ।

सीता : दुष्ट, कौन है तू?

रावण : समुद्र की जलराशि जिसके चरण धोती है, जो पर्वतशिखर पर बसी है, उस कनकलंका के भयानक राक्षसों का बलशाली सम्राट् रावण। हाँ, प्रदीप्त विक्रम से विकसित रावण।

[अट्टहास]

सीता : हे भगवान! रक्षा करो! रक्षा करो!

[रोती है]

रावण : भुवनसुन्दरी, अब तुम लंका की सम्राज्ञी बनोगी, देवता और दानव तुम्हारी आज्ञा की प्रतीक्षा करेंगे, स्वयं रावण तुम्हारे चरणों का दास बनकर रहेगा। राज्यभ्रष्ट राम में रखा क्या है?

सीता : राम की तुलना में तुम अति तुच्छ हो रावण। यदि शक्ति है तो राम के सामने मेरा हरण करो!

रावण : अब तुम राम को सदा के लिए भूल जाओ।

सीता : रक्षा करो! रक्षा करो!

[रुदन के साथ चीत्कार]

रावण : सीता, पुष्पक विमान तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहा है। चलो मेरे साथ। —चलो। शीघ्र।

[रावण सीता को घसीटते हुए ले जाते हैं। अट्टहास। सीता की चीत्कार। करुण संगीत।]

चतुर्थ दृश्य

स्थान—लंका की अशोकवाटिका
समय—प्रभात

सीता : कैसा परिवर्तन हो गया ! स्वर्णमृग की प्राप्ति की इच्छा तो पूरी नहीं हुई, बल्कि मैं रावण के हाथों बन्दिनी हो गयी। आर्यपुत्र और लक्ष्मण ने ठीक ही कहा था कि वह स्वर्णमृग नहीं मायामृग है। उनकी बात नहीं मानने का यह भयानक परिणाम मुझे भोगना पड़ा।—जो सीता मिथिला की राजकुमारी थी, अयोध्या की राजवधू थी, वही सीता आज लंका की अशोकवाटिका में आँसू बहा रही है। रावण चाहता है कि मैं उसकी रानी बनूं।—लेकिन यह असम्भव है। इस शरीर पर राक्षसराज का अधिकार हो सकता है, लेकिन मन पर नहीं। (**सामने देखकर**) वह कौन आ रही है?—एक नारी—अकेली—राजवेश में !—आश्चर्य !

[शूर्पणखा का प्रवेश]

सीता : तुम कौन हो ?
शूर्पणखा : देवी सीता मुझे विस्मृत कर गयीं क्या ?
सीता : तुम मेरा नाम भी जानती हो ?
शूर्पणखा : सबकुछ जानती हूँ। मैं कुछ भी भूलती नहीं। अच्छा होता यदि मैं सब विद्याओं को खोकर भी विस्मृति की विद्या जान पाती। तब कदाचित् इतना दुःख नहीं भोगना पड़ता।

सीता : तुम तो एक पहेली हो। मैं क्या तुम्हारा परिचय प्राप्त कर सकती हूँ ? लगता है, तुम मुझसे कभी पहले भी मिल चुकी हो।
शूर्पणखा : हाँ, मिल चुकी हूँ।—नीलमणि है मेरा नाम।
सीता : नीलमणि ?
शूर्पणखा : अब नीलमणि नहीं, अब तो मैं शूर्पणखा हूँ। देखती हो मेरे भयानक नखों को ?
सीता : तुम्हारी नखें भयानक तो नहीं हैं।
शूर्पणखा : (**अट्टहास करके**) क्या कहती हो सीता !—जिन नखों में मेरे नवविवाहित पति का अरुण रक्त लगा हो, वे भयानक नहीं तो क्या सुन्दर हैं ?
सीता : नवविवाहित पति का अरुण रक्त ? तुम्हारा अभिप्राय मैंने समझा नहीं।
शूर्पणखा : मैंने उस तरुण से इसलिए विवाह नहीं किया था कि उसकी हत्या हो जाये, और वह हो गयी। मेरे भाई ने उसकी हत्या कर दी और मैं चुपचाप देखती रही। कुछ कर नहीं सकी।
सीता : कौन है तुम्हारा भाई ?
शूर्पणखा : जिसके आतंक से पवन अपनी गति मन्द कर देता है, समुद्र की उत्ताल तरंगें शान्त हो जाती हैं, यमराज का दण्ड रुक जाता है, वही राक्षसराज रावण मेरा भाई है।
सीता : तुम रावण की बहन हो ?—राक्षसी हो ?
शूर्पणखा : मेरे पिता ब्राह्मण-कुल-सूर्य विश्रवा मुनि हैं, पर माँ कैकसी राक्षस-कुलोत्पन्न है। इसलिए मैं दोनों हूँ।
सीता : रावण ने मेरा हरण किया है। क्या तुम कुछ कारण बता सकती हो ?
शूर्पणखा : (**अट्टहास**) भोली जनकनन्दिनी, बिना कारण इस संसार में कुछ नहीं होता। तुम्हारा हरण मैंने कराया है।
सीता : तुमने ? भला मैंने तुम्हारा क्या बिगाड़ा था !
शूर्पणखा : तुम्हारे कारण ही राम ने मुझे स्वीकार नहीं किया। इसलिए रावण के मन में तुम्हारे प्रति आकर्षण भर दिया। मेरी बातों से

सम्मोहित होकर ही रावण ने तुम्हारा हरण किया।

सीता : इससे तुम्हें क्या लाभ हुआ ?

शूर्पणखा : दो लाभ हुए। एक तो राम को पत्नी-वियोग का घोर सन्ताप मिला, दूसरा मेरे भाई रावण को लक्ष्मीसदृश्य एक नारी मिल गयी।

सीता : जिस रावण ने तुम्हारे पति का वध किया, उसे तुम इतना महत्व देती हो ?

शूर्पणखा : सीता, शूर्पणखा की मर्मव्यथा को तुम कैसे समझोगी ? कैसे समझोगी कि मेरी छाती के भीतर कैसा हाहाकार मचा है ?—यह आग प्रतिदिन उग्र से उग्रतर होती जा रही है। इस आग के शमन के लिए ही तो मैं राम के पास गयी थी। लेकिन उस मूर्ख ने इसे शान्त तो नहीं किया, बल्कि अपमान के ईंधन से इसे और प्रज्ज्वलित कर दिया।

सीता : लगता है, तुम विक्षिप्त हो।

शूर्पणखा : तुम ठीक समझती हो। तुम आज पति-वियोग में दुःखी हो, और मैं—मैं कई वर्षों से इस दुःख को ढोये चल रही हूँ। तुम नारी हो। मेरी भावना को समझ सकती हो।

सीता : ओह ! शूर्पणखा ! तुम इतनी दुःखी हो !—मैं तो इसकी कल्पना भी नहीं कर पायी थी।

शूर्पणखा : सीता ! तुम नहीं जानतीं, मैंने प्रतिज्ञा की थी कि मैं लंका में आजीवन प्रवेश नहीं करूँगी और इसीलिए मैं दण्डकारण्य में रहने लगी थी। चाहती थी कि मैं सबकुछ भूल जाऊँ। लेकिन राम के दर्शन ने मेरे अतीत को फिर वर्तमान में परिणत कर दिया। बड़ी भाग्यशाली हो तुम देवी कि तुमने राम जैसा पति पाया। राम दिव्य प्रकाश से युक्त चन्द्रमा है। उसकी चन्द्रिका किसका मन नहीं मोह लेगी ? मैं तो एक सामान्य नारी हूँ। अपने दुर्भाग्य को भूलकर मैंने दासी बनने का निवेदन किया था। विधाता ने तो मेरा सुख पहले ही छीन लिया था ! ···ओह···

[रोने लगती है।]

सीता : शूर्पणखा, मैं नहीं जानती थी अन्यथा मैं आर्यपुत्र को समझाती। हम दोनों उनकी सेवा में रहतीं। क्या आकाश में सूर्य और चन्द्र नहीं बसते ?

शूर्पणखा : तुम महान् हो सीता। मैं ईर्ष्यावश लंका के परित्याग की प्रतिज्ञा को भूलकर तुम पर हँसने आयी थी। लेकिन तुम्हारे सहानुभूति-भरे मीठे शब्दों के सामने मेरी ईर्ष्या गल गयी।—बताओ, तुम क्या चाहती हो ?

सीता : क्या तुम मेरी सहायता कर सकती हो ?

शूर्पणखा : शूर्पणखा केवल एक नारी नहीं, बल्कि इसमें पुरुषों की वीरता, माया की अपार शक्ति और युद्ध करने की क्षमता भी है। अपनी इच्छा व्यक्त करो।

सीता : बहन, मैं चाहती हूँ कि तुम मुझे आर्यपुत्र के पास पहुँचा दो। तुम्हारी चिरकृतज्ञ रहूँगी। आर्यपुत्र पागलसदृश्य वनों में मुझे ढूँढ़ रहे होंगे।

शूर्पणखा : मेरे लिए यह कार्य कठिन नहीं है। लेकिन मैं वैसा कर नहीं सकूँगी। मुझे रावण से प्रतिशोध लेना है। तुम्हारे चले जाने से रावण का सीधा संघर्ष मुझसे होगा जो मैं चाहती नहीं।

सीता : फिर तुम क्या चाहती हो ?

शूर्पणखा : राम-रावण युद्ध और रावण-समेत लंका का सर्वनाश।

सीता : तुम्हारे अंजन-अंचित नयनों से प्रतिहिंसा की ज्वाला निकल रही है। घने केश के भार से युक्त तुम्हारे शरीर से मानो आग की लपट निकल रही है।

शूर्पणखा : सीता, तुम्हारे कल्याण का एक ही उपाय है।

सीता : वह क्या ?

शूर्पणखा : रावण के निवेदन को ठुकरा दो। उसके प्रेम में वासना है। भूल-कर भी उसके मायाजाल में न फँसो।—रावण दुस्साहसी है, फिर भी उसमें इतना साहस नहीं कि वह तुम पर अपना बल प्रयोग करे।—मैं तुम्हारी सहायता करूँगी। तुम निश्चिन्त रहो। अब मैं जाती हूँ।

[प्रस्थान]

सीता : एक नारी के लिए इस युग के दो महान् वीर युद्ध करेंगे—आर्यपुत्र और लंकापति रावण। एक धरती पर खड़ा है—कोमल काया धारण कर और सत्य को आधार मानकर। दूसरा है—राक्षसों का अधिपति, सोने की लंकापुरी का सम्राट्, महाबलशाली तथा अनीति, अत्याचार, असत्य और छल को आधार मानकर। साक्षी रहेगा त्रेतायुग इस भयानक युद्ध का। देखना है—जय किसकी होती है।

[नेपथ्य में]

त्रिभुवन-विजयी, लंकाधिपति, देव-दैत्य-दानव-विजयी, महाबली, राक्षसाधिपति, महाराज रावण आ रहे हैं।—सावधान ! सावधान !!

सीता : रावण आ रहा है। मुझे फिर प्रलोभन देगा, धमकी देगा। लेकिन मैं शूर्पणखा का कहा मानूंगी। रावण के निवेदन को अस्वीकार करूँगी। शूर्पणखा ने अनजाने में जो कुछ कहा, उससे मुझे बड़ा बल मिला है।

[दास-दासियों से घिरे रावण का प्रवेश। सीता मुँह फेर लेती है।]

रावण : सीता, इधर देखो, लंकेश्वर तुम्हारे सामने खड़ा है।

सीता : मैं आपकी उपस्थिति का अनुभव कर रही हूँ।—क्या कोई नया प्रस्ताव है आपका ?

रावण : तुम मेरी ओर नहीं देखना चाहती हो, न देखो। लेकिन सामने होकर बातें तो कर सकती हो।

[सीता सामने खड़ी होती है, पर दृष्टि दूसरी ओर रहती है।]

सीता : अब तो आप प्रसन्न हैं सम्राट् ?

रावण : इतनी उपेक्षा ! ऐसा रूक्ष स्वर !—नहीं सीता, अब तुम्हारा रूक्ष भाव अच्छा नहीं लगता।

सीता : क्या अच्छा लगता है ?

रावण : तुम मेरे प्रस्ताव को मान लो। राम को भूल जाओ। नये जीवन में प्रवेश करो। इस रावण-समेत समस्त लंका पर शासन करो।

सीता : आप प्रतिदिन इसी तरह की बातें करते हैं।

रावण : सीता, इस जीवन को नष्ट करने से क्या लाभ ?—तुम इस अशोक-वाटिका में कई महीने से हो। यदि राम को तुम्हारे लिए कुछ भी मोह होता तो अब तक वह तुम्हारा उद्धार करने के लिए अवश्य आता। स्पष्ट है, राम तुम्हें भूल गया। इसलिए उचित है कि तुम भी राम को भूल जाओ।

सीता : नहीं लंकेश, आर्यपुत्र एक दिन अवश्य यहाँ आयेंगे। तभी लंका का महानाश होगा।

रावण : उस राज्यभ्रष्ट राम के लिए शरीर को सुखाना व्यर्थ है। इतने दिनों में उसने कौन-सा सुख तुम्हें दिया ? मिथिला की सुकोमल सुन्दरी राजकुमारी को तो किसी सम्राट् के साथ प्रासाद में होना चाहिए था। अयोध्या का राज्य इस लंका की तुलना में अत्यन्त तुच्छ है। जिस तरुण की सेज हरी घास है, जिसका भोजन कन्दमूल है, जिसके पास कोई वाहन नहीं, जिसके साथ कोई अनुचर नहीं, जो पिता-माता के क्रोध से निर्वासित है, जिसने सुख की छाया भी नहीं देखी, उस निर्मोही जटाधारी राम के लिए तुम्हें इतना प्रेम क्यों है ?

सीता : नारी पति के व्यक्तित्व को देखती है, उसके राजसी मान को नहीं। नारी पति के प्रेम को देखती है, उसकी मिथ्या मर्यादा को नहीं। यह सत्य है कि अयोध्या छोटा-सा राज्य है, लेकिन उसकी धरती में वह मिट्टी है जिसकी पवित्रता अनन्तकाल तक अक्षुण्ण रहेगी, लेकिन आपकी कनक लंका की धरती रक्त से सनी है, आपके स्वर्णमण्डित प्राचीर दीन-दुखियों की आह पर बने हैं। राम पिता-माता के कोप से निर्वासित नहीं हुए, बल्कि मर्यादा की रक्षा के लिए वनों में आये हैं। आपकी सम्पत्ति से जिनकी आँखें चमकती हैं, वैसी नारियों की कमी नहीं है सम्राट्। लेकिन संसार में कुछ वैसी नारियाँ भी हैं जिनके मन को सम्पत्ति और राजसी शोभा से भी नहीं जीता जा सकता।

रावण : सीता, पता नही तुममें कौन-सा आकर्षण है जो मुझे नींद में भी सताता है। तुम संसार की अकेली वह नारी हो जिसके सामने रावण ने प्रणय-विवेदन किया है, तुम अकेली वह नारी हो जिसने रावण के प्रणय-निवेदन को बार-बार ठुकराया है। तुमने मेरे पौरुष को ललकारा है। पहली बार एक सामान्य नारी के सम्मुख रावण पराजित हुआ है।

सीता : सामान्य नारी ?—हाँ, एक सामान्य नारी हूँ मैं अन्यथा तुम जैसे राक्षस को साधु कैसे मान लेती ? तुम्हारी बातों में आकर लक्ष्मणरेखा पार करके अपने को तुम्हारे जाल में कैसे फँसाती ?

रावण : यही भोलापन तुम्हारे सौन्दर्य को बढ़ा देता है सीते !

सीता : तुम मेरे सौन्दर्य की पूजा करते हो ?—यह झूठ है। सौन्दर्य की पूजा के लिए चरित्र-शुद्धि चाहिए जिसका तुममें अभाव है।—तुमने शक्ति का उपहास किया है।

रावण : असम्भव !—शक्ति का उपहास कैसे ?

सीता : यदि तुममें शक्ति होती तो मेरे पति से युद्ध करके तुम मेरा हरण करते। उनकी अनुपस्थिति में, वेष बदलकर आना और छल से मेरा हरण करना—शक्ति का उपहास नही तो क्या है ?

रावण : यह अनीति नही है जानकी ! राम ने शूर्पणखा का अपमान किया, उसका प्रतिशोध मैंने तुम्हारा हरण करके लिया। राम मेरा शत्रु है, इसलिए छल-बल सभी का प्रयोग उसके विरुद्ध किया जा सकता है।

सीता : तुम्हारे अनुसार यह उचित हो सकता है, लेकिन संसार का कोई व्यक्ति तुम्हारे इस कार्य को न्यायोचित नहीं मान सकता।

रावण : रावण किसी से भय नहीं खाता सीते ! मैं भगवान शिव के वरदान से अमर हूँ—यह कदाचित् तुम्हें ज्ञात नहीं।

सीता : ज्ञात है। इसी वरदान के कारण तुमने आतंक का साम्राज्य फैला रखा है। असीम बल अहंकार का कारण होता है—इसे तुम चरितार्थ कर रहे हो।

रावण : रावण के असीम बल को यदि भूल भी जाओ तो मेरे भाई कुम्भकर्ण

और मेरे पुत्र मेघनाद का बल कम नहीं है। एक कुम्भकर्ण अयोध्या की सारी सेना को ध्वंस करने के लिए पर्याप्त है। मेघनाद के शौर्य के सम्मुख नागराज वासुकी और देवराज इन्द्र को भी नतमस्तक होना पड़ा था। नागराज वासुकी की कन्या सुलोचना मेघनाद के चरण धोती है और देवराज इन्द्र लंका के द्वारपाल का काम करता था। मेरा पुत्र 'इन्द्रजीत' के नाम से विख्यात है।

सीता : सबकुछ जानती हूँ सम्राट्। लेकिन भविष्य कह रहा है कि आपके पाप का कटु परिणाम इनके हिस्से भी पड़ेगा। आपका स्वर्णमुकुट, चिर-अर्जित गौरव, सब नष्ट हो जायेगा।

रावण : सीता, तुम सबकुछ भूल जाओ। यही समझ लो कि एक हताश प्रेमी तुम्हारी स्वीकृति की, आतुरता से, प्रतीक्षा कर रहा है।

सीता : यह प्रेम आपके लिए हलाहल है सम्राट्। आपके इष्टदेव महादेव क्षीरसागर से उत्पन्न जिस हलाहल को पीकर नीलकण्ठ कहलाये, उससे अधिक विष है इसमें। आप इसका पान नही कर सकते—कदापि नहीं।

रावण : अच्छी बात है। मैं उस दिन की प्रतीक्षा करूँगा जब तुम मेरे प्रेम को स्वीकार करोगी और मेरे साथ लंका के राजसिंहासन पर बैठोगी। उस दिन मैं अपने को सचमुच बड़ा भाग्यशाली मानूंगा।—सीता, मैं तुम्हें फिर अवकाश देता हूँ। मेरे प्रस्ताव पर पुनः विचार करो।—प्रतिहारी, सीता को ले जाओ। इसे विश्राम करने दो। मैं एकान्त चाहता हूँ।

सीता : सम्राट् रावण, फिर सुन लें···

रावण : सुनने के लिए पुनः आऊँगा। अभी मुझे एकान्त की आवश्यकता है।

सीता : एकान्त ?···

रावण : एकान्त ! एकान्त !! प्रतिहारी, इसे ले जाओ और स्मरण रखो, सीता की इच्छा के विरुद्ध कोई अभद्र व्यवहार न करना। यह मेरी सम्मानित अतिथि है।—जाओ।

[प्रतिहारी को संकेत करते हैं। आगे-आगे प्रतिहारी और पीछे-पीछे सीता का चुपचाप प्रस्थान। अन्य चर भी रावण का संकेत पाकर चले जाते हैं।]

रावण : सीता के तीखे शब्द मेरे कानों में गूंज रहे हैं। लंकापुरी में बन्दिनी होने पर भी इसमें वही तेज है। नील गगन में मानो यह एक चमकता तारा है जो सूर्यचन्द्र की चमक को भी हतप्रभ कर रहा है। इस नारी के सम्मुख मेरी वाणी रुक जाती है, मेरी महिमा खण्डित हो जाती है। चाहता हूँ कि बल प्रयोग करूँ। लेकिन यह विचार आते ही अपने को अशक्त अनुभव करने लगता हूँ।—मैंने मायारूप धारण किया, राम बनकर इसके सामने उपस्थित हुआ। एक क्षण के लिए इसने पतिभाव से मुझे देखा भी, पर लगा कि राम बनने पर मैं रावण नहीं रह जाता और जब मैं रावण नहीं रहा तो फिर विजय किसकी ?—राम की। रावण तो पराजित ही रहा।—नहीं, रावण रावण है और रावण रहेगा। रावण बनकर ही मैं सीता के विश्वास को जीत पाऊँगा।—तभी रावण का गौरव है।

[रावण के पुत्र मेघनाद और भाई विभीषण का प्रवेश। दोनों रावण के चरण छूते हैं।]

मेघनाद : पिताजी, क्षमा करें। एक आवश्यक समाचार है। इसी कारण आपके एकान्तवास में बाधक बना।

रावण : कैसा समाचार मेघनाद ?

मेघनाद : सूचना मिली है कि राम सेना-सहित समुद्रतीर पर आ गये हैं। उनका शिविर लग चुका है और समुद्र पर सेतुबन्ध का कार्य प्रारम्भ हो गया है।

रावण : राम सेना-सहित समुद्रतट पर आ गया ! आश्चर्य ! लेकिन राम को सेना कहाँ से मिली ?

मेघनाद : कहा जाता है कि राम ने किष्किन्धा के राजा और आपके अभिन्न मित्र बाली का वध किया। उसके भाई सुग्रीव का राज्याभिषेक किया।

उसी सुग्रीव की सेना राम के साथ है। राम के साथ लक्ष्मण, सुग्रीव, बालीपुत्र अंगद और सुग्रीव का वीर मन्त्री हनुमान भी है।

रावण : हनुमान ?—कौन हनुमान ?

विभीषण : लंकेश, यह वही हनुमान है जिसके कारण लंका के स्वर्णप्रासाद अग्नि से नष्ट हो गये, जिसने आपके पुत्र अक्षयकुमार का वध किया और जिसे मेघनाद ने बन्दी बनाया। वह काल का रूप है। उसने अपने आतंक की अमिट छाप लंकावासियों के मन पर छोड़ी है।

रावण : विभीषण, शत्रु जब समुद्रतीर पर आ गये हैं तो युद्ध अवश्यम्भावी है।

मेघनाद : आप ठीक कहते हैं। युद्ध अवश्यम्भावी है। राम युद्ध के सभी उपकरणों से सुसज्जित हैं।

रावण : विश्वास नहीं होता कि मेरे मित्र अजेय वाली का वध हुआ। किष्किन्धा में उसके होने से मुझे आर्यावर्त्त से कभी भय नहीं हुआ। बाली-रावण की मित्रता का एक यह भी लक्ष्य था कि वह राह में चट्टान की तरह अड़ा रहे। लेकिन राम ने वाली का वध करके उस चट्टान को मार्ग से हटा दिया।

विभीषण : आपका अनुमान सही है।

रावण : और वह कायर सुग्रीव जिसने अपने वीर भाई की राम द्वारा हत्या करायी, वह भी राम से जा मिला ! जिसके वीर पिता का वध हुआ, वह दुष्ट अंगद भी राम की पूजा कर रहा है। आश्चर्य !

विभीषण : महाराज, स्थिति बड़ी गम्भीर है। ऐसा कभी सुना नहीं गया कि समुद्र से घिरी लंका पर बाहर से लोग आक्रमण करें।

मेघनाद : इसमें चिन्ता की कोई बात नहीं है चाचाजी। यदि पिताजी आज्ञा दें तो मैं एक दिन में राम को ससैन्य समाप्त कर सकता हूँ।

विभीषण : मेघनाद, तुम बच्चे हो। इसी से राम को सामान्य पुरुष समझते हो।

रावण : मेघनाद ठीक कहता है विभीषण। क्या यह बात तुमसे छिपी है कि

इसने नागराज वासुकी को बन्दी बनाया है ? गर्व से युक्त देवराज इन्द्र को रण में पराजित करके उसे लंका के कारागार में रखा था ? भगवान शिव और भगवती जगदम्बा को प्रसन्न करके इसने अमरत्व का वरदान पाया है ? आज इन्द्रजीत के नाम को सुनते ही देवगण भी सहम जाते हैं।

विभीषण : पिताजी, यदि चाचाजी को मेरे कथन पर सन्देह है तो आज्ञा दीजिए। मैं राम पर अविलम्ब आक्रमण करने के लिए तैयार हूँ।

रावण : इन्द्रजीत, शीघ्रता में निर्णय लेना ठीक नहीं। हम इस पर ठीक से विचार करके कोई निर्णय लें। सबसे पहले मैं विभीषण के विचार जानना चाहूँगा।

विभीषण : सम्राट्, मुझे लगता है कि राम कोई साधारण पुरुष नहीं है। जिस वाली ने आप जैसे वीर को पराजित किया, उसका वध राम ने किया। जिस कार्त्तवीर्य अर्जुन ने आपको पराजित किया, उसका वध परशुराम ने किया और उस परशुराम को राम के सम्मुख नतमस्तक होना पड़ा। जिसके पराक्रम से आप आर्यावर्त्त की ओर से निश्चिन्त थे, उन खर-दूषण-त्रिशिरा आदि सहस्रों योद्धाओं का वध राम ने किया। फिर भी आप पिता-पुत्र उन्हें साधारण पुरुष की संज्ञा देते हैं। आश्चर्य ?

रावण : तुम्हारा कहना ठीक है विभीषण। लेकिन क्या इन्हीं कारणों से हम राम के आगे घुटने टेक दें ?

मेघनाद : नहीं पिताजी, मेघनाद के रहते ऐसा कभी नहीं होगा।

विभीषण : बेटे, तुम नहीं जानते। सीता के स्वयंवर में तुम्हारे पिता जिस शिवधनुष को उठा तक नहीं सके, उस शिवधनुष को राम ने, बात-की-बात में उठाकर तोड़ दिया। क्या वैसे व्यक्ति को तुम साधारण मानते हो ?

मेघनाद : चाचाजी, मुझे अमर और अजेय होने का वरदान प्राप्त है।

विभीषण : उस वरदान का राम के सामने कोई महत्व नहीं है। वीरता में यदि अहंकार आ जाये तो पतन का मार्ग सरल हो जाता है।

रावण : विभीषण, उपदेश न दो। बताओ, हमें इस स्थिति में क्या करना चाहिए ?

विभीषण : मेरे विचार से आप सीता को ससम्मान राम के पास भिजवा दें।

रावण : (**व्यंग से**) और साथ ही लंका का साम्राज्य भी राम के चरणों में अर्पित कर दें। क्यों ?

विभीषण : जिस राम ने पिता-माता की आज्ञा से अपने राज्य को तृणवत् त्याग दिया, वे आपके साम्राज्य के प्रति कोई मोह नहीं रखते।

रावण : विभीषण, तुम मेरी और कुम्भकर्ण की भाँति मुनि विश्रवा के पुत्र हो। हम सब एक ही माँ की सन्तान हैं। यह तुम्हें शोभा नहीं देता कि मेरी मर्यादा के विरुद्ध बातें करो।

विभीषण : सम्राट्, आप मेरे अग्रज हैं, पूज्य हैं। मैं आपकी तरह वीर नहीं, पर विवेकशील अवश्य हूँ। लंका की सुख-शान्ति को अक्षुण्ण रखने और आपकी मर्यादा को बनाये रखने के लिए ही मैंने ऐसा कहा।

रावण : यदि अभी कुम्भकर्ण यहाँ होता तो तुम्हें यथोचित उत्तर देता।

विभीषण : भाई कुम्भकर्ण यद्यपि स्वभाव से उग्र हैं, तथापि उनके भी ये ही विचार हैं।

रावण : तुम कैसे जानते हो ?

विभीषण : भाई कुम्भकर्ण ने सीता के लाये जाने पर आपके सामने आपत्ति की थी। उन्होंने कई बार मुझे भी कहा कि सीता का हरण लंका के लिए अशुभ है, और आज मुझे लग रहा है कि उनका कथन सत्य था।

रावण : विभीषण, लगता है, तुम सब मेरे विरुद्ध षड्यन्त्र कर रहे हो। इसका सबसे बड़ा प्रमाण है कि लंका के अग्निदाह के पूर्व गुप्तभाव से राम का वह भयंकर दूत हनुमान तुमसे मिला था। आज मालूम हुआ कि तुम मेरे शत्रु राम से मिले हुए हो अन्यथा मेरे सामने राम की प्रशंसा न करते।

विभीषण : हनुमान मुझसे अवश्य मिले थे। वे राजमहिषी मन्दोदरी से भी मिले थे। उन्होंने हम दोनों को कहा था कि यदि रावण सीता को लौटा दें तो शत्रुता का कोई कारण शेष न रहेगा। लेकिन मैंने जान-बूझकर आपको पहले यह नहीं कहा क्योंकि मैं जानता था कि आप मेरा कहा नहीं मानेंगे, और आज आपने यह स्पष्ट कर दिया।

रावण : कुलांगार विभीषण, तुमने यह भी स्पष्ट कर दिया कि मैं अपने घर में एक विषैले सर्प को पाल रहा हूँ जो मुझे डँसने को तैयार है। लेकिन मैं उस सर्प के फण को कुचलना जानता हूँ। हाथ में खड्ग और युद्ध करो मुझसे ताकि मैं तुम्हें वीर के समान मृत्युदान दे सकूँ।

मेघनाद : पिताजी, यह क्या? आप अपने भाई पर आघात करेंगे?

रावण : इन्द्रजीत, यह आवश्यक है कि मैं राम से युद्ध करने के पूर्व विभीषण के रक्त में अपनी तलवार रंग लूँ। विभीषण!

विभीषण : क्षमा करें सम्राट्।—मैं किसी के रक्त का प्यासा नहीं हूँ।—मैंने जो कुछ कहा है, वह आपके शुभ के लिए।

रावण : रामभक्त विभीषण! सुन लो···

विभीषण : सम्राट्, मैं रामभक्त अवश्य हूँ, लेकिन आपका हितचिन्तक हूँ।—फिर निवेदन करता हूँ—सीता को सम्मान लौटा दें।

रावण : नहीं। सीता नहीं लौटायी जा सकती। और, तुम्हें मैं निष्कासन का दण्ड देता हूँ। चले जाओ विभीषण। जाओ राज्यभ्रष्ट राम की शरण में। राम तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहा है।—लंका में तुम जैसे राजद्रोही का कोई स्थान नहीं है।

विभीषण : सम्राट्!···

रावण : लंका के सम्राट् का आदेश है।—प्रतिवाद करके मुझे उत्तेजित न करो। जाओ।

विभीषण : जाता हूँ सम्राट्। महानाश निकट आ रहा है। आप लंका की सुख-शान्ति को नष्ट करेंगे। दुःख है, आपने मेरा तिरस्कार किया। प्रणाम।

[प्रस्थान। रावण देखते रहते हैं।]

रावण : बेटा इन्द्रजीत!

मेघनाद : आदेश दीजिए पिताजी।

रावण : हमारे सेनापति प्रहस्त, महोदर, दीर्घकर्ण, अतिकाय आदि को कह दो कि शत्रु समुद्रतीर पर आ गये हैं। युद्ध अवश्यम्भावी है। चारों ओर सैनिकों को नियत कर दें। युद्ध के सारे उपकरण ठीक कर लिये जायें।

उन्हें यह भी आदेश दो कि वे अविलम्ब सभाभवन में मन्त्रणा के लिए उपस्थित हों। जाओ।

मेघनाद : जो आज्ञा।

[प्रस्थान]

पंचम दृश्य

स्थान—सागर-तीर

[राम, लक्ष्मण, हनुमान आदि वीर खड़े बातें कर रहे हैं। सामने एक शिवलिंग है। आसपास पूजा के लिए पुष्पादि रखे हैं।]

राम : आराधना के सभी सामान रखे हैं। लेकिन बिना आचार्य के पूजा कैसे होगी ?

लक्ष्मण : मैंने तो पहले ही कहा था कि पवनकुमार को भेजकर अयोध्या से गुरु वशिष्ठ को बुला लिया जाये।

राम : गुरु वशिष्ठ को बुलाना इतना सरल नहीं है लक्ष्मण। अयोध्या में यदि सीताहरण का समाचार पहुँचता तो भरत आदि को व्यर्थ में चिन्ता होती और वे सब यहाँ आना चाहते।

लक्ष्मण : तो फिर बिना आचार्य के ही रामेश्वरम् की प्रतिष्ठा क्यों न कर ली जाये ? भगवान शिव को भी तो ज्ञात है कि इस अनजान स्थान में अभाव के बीच उनकी पूजा की जा रही है।

राम : पवनकुमार चुप हैं। उनकी क्या राय है ?

हनुमान : आचार्य नहीं होंगे तो पूजा कौन करायेगा ? मेरे विचार से आचार्य का होना अत्यावश्यक है।

राम : नील गगन साक्षी है, फेनिल समुद्र साक्षी है, मैं आचार्य के आने तक प्रतीक्षा करूँगा।

लक्ष्मण : लेकिन इस एकान्त समुद्र-तीर पर, अयोध्या से इतनी दूर, इस यज्ञ

का आचार्य कौन ब्राह्मण होगा ?

राम : वह आचार्य मेरे मन में है।

हनुमान : आपके मन में ? कौन है वह परम भाग्यशाली पुरुष ?

राम : लंकापति रावण।

लक्ष्मण और हनुमान : (**साश्चर्य**) रावण ?

राम : (**मुस्कराते हुए**) इसमें आश्चर्य क्या है ? क्या रावण ब्राह्मण नहीं है ? क्या वह सभी वेदों और शास्त्रों का मर्मज्ञ नहीं है ? क्या वह भगवान शिव का उपासक नहीं है ? क्या वह पूजा की विधि नहीं जानता है ?

लक्ष्मण : भैया, आप क्या कहते हैं ? रावण हमारा चिरशत्रु है, उसने देवी सीता का हरण किया है। पवनकुमार का अपमान किया है। क्या उसे पता नहीं है कि हमारा यह समस्त आयोजन उसके हित के विरुद्ध है, हम उस पर आक्रमण करना चाहते हैं, उसे पराजित करना चाहते हैं ? क्या वह इन बातों से अनभिज्ञ है ?

राम : रावण सबकुछ जानता है। फिर भी वह अवश्य यहाँ आयेगा।

लक्ष्मण : क्या आप उसे इतना बड़ा मूर्ख समझते हैं कि अपने विरुद्ध आयोजित इस यज्ञ में वह उपस्थित होकर आचार्य का कार्य करेगा ?

राम : रावण मूर्ख नहीं है लक्ष्मण। वह इस युग का एक महान् पण्डित है। शत्रु होने पर भी वह आचार्यपद की गरिमा को समझता है।

लक्ष्मण : यदि वह वहाँ उपस्थित होने का दम्भ रखता है और आपके इस यज्ञ में योगदान देता है तो फिर वह देवी सीता को लौटा क्यों नहीं देता ?

राम : तुम लंकेश्वर रावण के वीर-दर्प को भूल रहे हो। राजा रावण के लिए वही उचित है कि यदि उसने सीता का हरण किया है तो बिना युद्ध के उसे वापस न करे।

हनुमान : क्या मैं जान सकता हूँ कि आप किस रावण की प्रतीक्षा कर रहे हैं ?

राम : यह राजप्रमाद से ग्रसित रावण नहीं है, बल्कि उसका विपरीत रूप है मुनि विश्रवा का पुत्र, ऋषि पुलस्त्य का पौत्र तथा सृष्टिकर्त्ता ब्रह्मा की पीढ़ी में जन्मा ब्राह्मण रावण।

हनुमान : रघुवीर, आपको समझना कठिन है। शत्रु को आचार्यपद देना आप जैसे पुरुषोत्तम के लिए ही सम्भव है।

लक्ष्मण : भैया, क्या आपने किसी को रावण के पास भेजा है ?

राम . हाँ लक्ष्मण, रावण के पास मैंने एक दूत भेजा है। रावण से निवेदन किया है कि वह आचार्य बनकर यज्ञ कराये। दूत अब तक नहीं लौटा है।

लक्ष्मण : दूत कदाचित् ही लौटे। अहंकारी रावण ने अवश्य उसका वध कर दिया होगा।

राम : दूत अवध्य होता है—राजा रावण भले यह भूल जाये, पर ब्राह्मण रावण इसे जानता है।

हनुमान : आचार्य की प्रतीक्षा में समय बीतता जा रहा है।

राम : वीर लक्ष्मण और हनुमान, एक बात मत भूलना। रावण आचार्य के रूप में यहाँ आयेगा। आचार्य के योग्य उसे सम्मान मिलना चाहिए। हमारी सेना का कोई वीर आचार्य के सम्मान के विरुद्ध आचरण प्रदर्शित न करे।

हनुमान : यही होगा रघुवीर।···आप चिन्ता न करें।

रावण : (नेपथ्य से) उपस्थितोहम् आचार्य रावणः। (आचार्य रावण उपस्थित है।)

राम : आप यज्ञभूमि में पधारें ब्राह्मणदेव।

[ब्राह्मण वेष में रावण का प्रवेश। सभी लोग रावण को प्रणाम करते हैं। रावण आशीर्वाद देते हैं। सभी रावण की ओर आश्चर्य से देखते हैं।]

राम : मैं जानता था, आप अवश्य आयेंगे।

रावण : मैं भी जानता कि इतनी शीघ्रता में मेरे अतिरिक्त तुम्हें और कोई पुरोहित न मिलेगा।

राम : आप मेरे इस यज्ञ के आचार्य हैं। आप पूजा प्रारम्भ करायें। पूजा के सभी सामान प्रस्तुत हैं।

रावण : तुम्हारा यह यज्ञ युद्ध में विजय प्राप्त करने के लिए है। क्यों राम ?

राम : आपका अनुमान ठीक है।

रावण : तुम मेरे द्वारा रामेश्वरम्-स्थापना करना चाहते हो। क्यों राम ?

राम : यह भी ठीक है।

रावण : जब यह यज्ञ इतना महत्त्वपूर्ण है तो क्या तुम वेदी पर अकेले बैठोगे ?

राम : आपका अभिप्राय ?

रावण : क्या ऐसे महत्त्वपूर्ण यज्ञ में तुम्हारी पत्नी का साथ में बैठना उचित नहीं होगा ?

[राम चुप]

रावण : राम, चुप क्यों हो ? उत्तर दो। इस यज्ञ में तुम्हारे पार्श्व में सीता की उपस्थिति अत्यावश्यक है।

राम : आचार्य, सीता तो लंका में बन्दिनी है। वह यहाँ नहीं आ सकती।

रावण : नहीं आ सकती या तुम उसे बुलाना नहीं चाहते ?

राम : उसका इस यज्ञ में उपस्थित होना सम्भव नहीं।

रावण : राम के लिए जब यह सम्भव है कि वह रावण को पौरोहित्य के लिए आने को विवश कर सकता है तो फिर और क्या असम्भव है ?

राम : इसका निदान आप ही कुछ सोचें आचार्य !

रावण : सीता इस यज्ञ में अवश्य उपस्थित होगी।

राम : आचार्य, क्या कह रहे हैं आप ?

रावण : सच कह रहा हूँ। आश्चर्य न करो। जिस समय तुम्हारा यह निवेदन मिला, उसी समय यह समस्या मेरे सामने आयी। तुमने मुझ-जैसे शत्रु को आचार्यपद देकर मान बढ़ाया है। मैं यह सोच कर क्षण भर के लिए स्तब्ध रह गया। फिर ध्यान आया तुम-जैसे महान् शिष्य की विवशता का। सीता के अभाव में तुम्हारी पूजा अधूरी रह जाती। इसलिए सीता को मैं अपने साथ ले आया हूँ।

राम : आचार्य रावण !···आप···आप···

रावण : नहीं, स्वयं महान् नहीं हूँ। तुम्हारी महानता ने मुझे महान् बना

दिया। लेकिन राम, सीता यहाँ तभी उपस्थित होगी जब तुम एक प्रतिज्ञा करोगे।

राम : कैसी प्रतिज्ञा ?

रावण : सीता से यह प्रतिज्ञा मैंने पहले करा ली है।

राम : आप स्पष्ट कहें।

रावण : सीता यहाँ आयेगी। लेकिन वह लंकेश्वर की वन्दिनी है। तुम लोगों से बातें नहीं करेगी। तुम लोगों को भी उससे वार्तालाप नहीं करना है। यज्ञोपरान्त वह लौट जायेगी। बोलो, स्वीकार है ?

राम : स्वीकार है।

रावण : लक्ष्मण, तुम दक्षिण दिशा की ओर जाओ। वृक्षों के समूह के बीच मेरा रथ खड़ा है। पीतवस्त्र में सीता रथ पर बैठी है। तुम्हारी प्रतीक्षा कर रही है। उसे आदर के साथ ले आओ। ध्यान रहे, भावावेश में वार्तालाप न कर बैठना।

लक्ष्मण : आचार्य, यह अन्याय है।—क्या मैं देवी के चरणस्पर्श भी न कर सकूंगा ?

रावण : हाँ इतना क्षम्य है। —जाओ, विलम्ब न करो।

[लक्ष्मण का प्रस्थान]

रावण : राम, मैं तुम्हारी मर्मव्यथा को समझ रहा हूँ। कदचित् लंका के महल में मैं इसे समझ नहीं पाता।—यज्ञभूमि में शोक न करो। अपने मन पर नियन्त्रण रखो।

[शान्त भाव में सीता का प्रवेश। उनके पीछे लक्ष्मण। सीता के नयनों में नीर। पीतवस्त्र। रोती हुई वह राम के चरण छूती हैं। सीता और राम भावविह्वल हो जाते हैं।]

रावण : राम, अब यज्ञ प्रारम्भ करो। मुझे शीघ्र वापस लौटना है।

लक्ष्मण : रावण, अब वापस लौटना भूल जाओ।

रावण : क्यों ?

लक्ष्मण : हम शत्रु को अकेला पाकर जीवित नहीं छोड़ सकते।

रावण : उद्धत् राजकुमार, क्या आचार्य के प्रति आर्यावर्त्त में यही सम्मान प्रदर्शित किया जाता है ?

लक्ष्मण : तुम आचार्य नहीं, हमारे चिरशत्रु हो रावण ! तुम अकेले हो। नहीं जानते कि मेरी सेना संकेत की प्रतीक्षा कर रही है। देवी हमारी बीच आ गयी हैं। यज्ञ का उद्देश्य पूरा हो गया। इसलिये देवी अब लौटायी नहीं जा सकतीं।

रावण : रावण अस्त्रहीन है। इसलिए तुम रावण पर आक्रमण करना चाहते हो। क्यों लक्ष्मण ?

लक्ष्मण : हम शत्रु को जीवित नहीं जाने देंगे। इस यज्ञभूमि में तुम्हारा वध करेंगे।

रावण : तो क्या तुम इस पवित्र यज्ञभूमि में, भगवान शिव के सम्मुख, एक ब्राह्मण का रक्त बहाना चाहते हो ? —पुरोहित के रक्त का तिलक अपने मस्तक पर लगाना चाहते हो ?

लक्ष्मण : कौन है आचार्य ? कौन है ब्राह्मण ? कौन है पुरोहित ? अत्याचारी रावण जिससे देव-दानव सभी त्रस्त हैं, हमारा शत्रु है—चिरशत्रु।

रावण : राजकुमार, तुम्हारे बढ़ते हुए तेवर को देखकर किसी भी शत्रु का रक्त उष्ण हो जायेगा, किन्तु रावण शत्रुरूप में नहीं, आचार्यरूप में आया है। वह पूज्य है। तुम्हारी संस्कृति इसे माने या न माने, लेकिन मेरी संस्कृति इसे मानती है।

लक्ष्मण : रावण, यदि प्राणरक्षा के लिए तुम अस्त्रधारण करना चाहते हो, तो हम अस्त्र दे सकते हैं।

रावण : लक्ष्मण, तुम भूल रहे हो कि सम्राट् रावण की शक्ति असीम है। वह माया का आचार्य है। क्षणमात्र में उसके हाथों में इच्छानुसार अस्त्र आ सकते हैं। वह कोई भी रूप धारण कर सकता है। देखते-देखते लुप्त भी हो सकता है। लेकिन वह ऐसा नहीं करेगा। जिस भगवान शिव की साधना वह प्रतिदिन करता आ रहा है, उसके स्थापन-स्थल पर वह अपना रक्तदान दे सकता है, लेकिन दूसरे का रक्त नहीं बहायेगा।

लक्ष्मण : तो वही होगा। अपना रक्तदान दो रावण। मैं आक्रमण करता हूँ।

राम : (ऊँचे स्वर में) लक्ष्मण !

लक्ष्मण : आदेश दें भैया ।

राम : तब से मैं अवाक् होकर तुम्हारी धृष्टता को देख रहा हूँ। क्या तुम भूल गये कि तुमने उच्चकुल में जन्म लिया है ?—क्या तुम भूल गये कि तुम रामानुज हो ? क्या तुम भूल गये कि रावण को हमने आचार्यपद का सम्मान दिया है ?—क्या तुम भूल गये कि रावण ब्राह्मणवेश में होने के कारण अवध्य हैं ?

लक्ष्मण : भैया···!

राम : रावण को मैंने आमन्त्रित किया है । मेरे वचन पर विश्वास कर वे यहाँ पधारे हैं । उनकी प्राणरक्षा का उत्तरदायित्व मुझ पर है ! रावण के रुधिर के पहले इस भूमि पर मेरा रुधिर बहेगा लक्ष्मण । यह जान लो ।

लक्ष्मण : भैया, क्षमा करें ।

रावण : (हर्षित स्वर) धन्य राम ! आज मैं मान गया कि लोग तुम्हें महान् क्यों कहते हैं । तुम्हारी परीक्षा लेने के लिए ही मैं आचार्य बना, सीता को तुम्हारे सम्मुख लाया । मैं भी देखना चाहता था तुम्हारी प्रतिक्रिया को ।—लक्ष्मण, तुम्हारा ऐसा व्यवहार स्वाभाविक है । कोई भी व्यक्ति ऐसी स्थिति में यही करता । तुम्हारा अपराध क्षम्य है ।

राम : आचार्य, लक्ष्मण को बालक समझ कर आप क्षमा कर दें । उसका स्वभाव उग्र है । उसने मेरे स्वार्थ के लिए ऐसा किया । वह नहीं जानता है कि ऐसा करके वह त्रेतायुग के एक महान् परिवर्त्तन को रोकना चाहता है ।—मैं उसकी ओर से क्षमा माँगता हूँ । मेरा निर्णय है कि इस पूजा के पश्चात् सीता लंका को लौट जायेगी । किसी को आपत्ति नहीं होगी ।

रावण : तुम्हारे इस निर्णय से मैं आश्वस्त हुआ । बीती बातें भूल जाओ । आओ, एकाग्र मन से भगवान शिव की पूजा करो ।

राम : आचार्य पूजा करायें, शिष्य तैयार है ।

रावण : राम, तुम बैठ जाओ । सीता तुम्हारे पास बैठेगी । सीता, इस शुभ

क्षण में शोक न करो । यदि चाहती हो कि जिस उद्देश्य से राम यह यज्ञ कर रहा है, वह सफल हो तो अपने पति का साथ दो ।

[एक ओर राम और सीता तथा दूसरी ओर रावण बैठ जाते हैं । रावण शिवताण्डवस्तोत्र का पाठ करके पूजा कराने लगते हैं । धीरे-धीरे अन्धकार । फिर रावण के मुखमण्डल पर प्रकाश । वे आँखें मूँदकर धीरे-धीरे मन्त्रोच्चार कर रहे हैं । फिर अन्धकार ।]

षष्ठ दृश्य

स्थान—रणभूमि के पास का एक स्थल।

[अकेली शूर्पणखा। दूर में रणघोष। 'श्री रामचन्द्र की जय' का समवेत स्वर।]

शूर्पणखा : श्री रामचन्द्र की जय !—यह स्वर कई दिनों से सुन रही हूँ। रावण की जय मानो इस गगनभेदी स्वर में सदा के लिए लुप्त हो गयी। लंका में भयानक युद्ध हो रहा है। अपने को अजेय कहनेवाले लंका के वीर राम द्वारा मारे गये। कुम्भकर्ण, नरान्तक, मेघनाद आदि का वध हुआ। जिन वीरों पर रावण को महान् गर्व था, वे आज सब काल के गाल में चले गये। लंका श्मशान हो गयी।—इस महा-नाश की जड़ मैं हूँ—नीलमणि। नहीं···नहीं, शूर्पणखा। रावण की स्वर्णलंका में कालनिशा फैलती जा रही है। क्या···नहीं···नहीं। विद्युत की मृतात्मा हँस रही है। जीवित रहकर विद्युत जो नहीं कर सका, वह उसने मरकर किया। आज मेरी प्रतिहिंसा पूरी हुई। लगता है, मैं रक्तसमुद्र में स्नान करके नयी वधू बनूंगी। वधू ! (**अट्टहास**) हाँ, विधवा ! वधू···की कामना वैधव्य की राख में दबी रह गयी। मन के भीतर धू-धू करती ज्वाला और ऊपर से यह शृंगार लगता है, कुष्ठरोग से ग्रसित व्यक्ति ने मोहक आवरण धारण कर लिया हो—शूर्पणखा, एक बार फिर अपने इस नाम का परित्याग करो। नीलमणि बनो। अपनी दुर्वार वासना का सदा के लिए अन्त कर दो। रावण को युद्ध बन्द करने की मन्त्रणा दो। उसे महानाश से बचा लो ?···अरे,

सामने कौन आ रहा है ? सिर पर राजमुकुट। कमर में तलवार। इस महानाश की बेला में यह बालअरुण कौन है ?

[विभीषण के पुत्र तरणीसेन का प्रवेश। सिर पर राजमुकुट। कमर में तलवार। राजसी वेश। मस्तक पर राजभक्त का टीका। तरणीसेन प्रणाम करते हैं।]

शूर्पणखा : लंका का भाग्यसूर्य जब अस्त हो रहा है, तब मुख पर वीरता-ज्योति लिए कौन हो तुम ?—क्या तुम भगवान अमृतेश के पुत्र कार्तिकेय हो ?

तरणीसेन : आप तरणीसेन को भूल गयीं क्या ? जिसे आपने गोद में खेलाया, माँ की अनुपस्थिति में जिसे आप लंका के पर्वतों पर ले जाया करती थीं, जिसे आप समुद्र की फेनिल तरंगें दिखाती थीं, वही अभागा, विभीषण-पुत्र, तरणीसेन हूँ मैं।

शूर्पणखा : बेटे, तुम तरणीसेन हो ?—इस श्मशान में जहाँ वीरों के शव पर्वत को भी लज्जित करते हैं, तुम क्यों आये हो ?

तरणीसेन : मैं युद्ध के लिए तैयार होकर आया हूँ। माँ ने मुझे भेजा है।

शूर्पणखा : भाभी सरमा क्या यह नहीं जानती कि तुम अभी बालक हो ? —तुम्हारे पिता राम का पक्ष धारण कर चुके हैं। तुम्हारे मस्तक पर रामभक्त का टीका लगा है। फिर तुम राम से युद्ध कैसे कर सकोगे ?

तरणीसेन : युद्ध के परिणाम से मुझे क्या मतलब ? माँ का आदेश है कि महाराज रावण के युद्धभूमि में जाने से पूर्व मुझे वहाँ जाना चाहिए। राम मेरे शत्रु हैं, पिता भी मेरे शत्रु हैं। मैं उन सबसे युद्ध करूँगा। बता सकती हो कि महाराज कहाँ हैं ?

शूर्पणखा : इन्द्रजयी मेघनाद का, निकुम्भिला की यज्ञभूमि में, लक्ष्मण ने वध किया है। रावण अब स्वयं युद्धभूमि में जाने की तैयारी कर रहा है।

तरणीसेन : मैं उन्हें रोकूंगा। तरणीसेन के जीवित रहते महाराज रावण युद्धभूमि में नहीं जा सकते। आज के युद्ध के लिए लंका का

सेनापति मैं बनूँगा ।

शूर्पणखा : तरणीसेन, यह आयु खेलने की है । तुम रणभूमि में मत जाओ । मेरा कहना मानो बेटे ।

तरणीसेन : तुम मुझे मत रोको । मैं महाराज से भेंट करने जाता हूँ ।

[प्रस्थान]

शूर्पणखा : विभीषण का पुत्र तरणीसेन ! ओह, इस अबोध बालक के मन में अपनी जन्मभूमि के प्रति ऐसा प्यार है, रावण के प्रति ऐसी श्रद्धा है, माता के आशीष में ऐसा विश्वास है !···और एक मैं हूँ जिसकी कुमन्त्रणा से लंका में रक्त की धारा बह रही है, सभी बन्धु-बान्धव नष्ट हो गये हैं। रावण और मैं—एक ही माता-पिता की सन्तान ! ओह !···क्या करूँ ? क्या करूँ ?

[रोने लगती है । रावण का प्रवेश । वे युद्धवेश में सज्जित हैं ।]

रावण : कौन ?—शूर्पणखा ?

शूर्पणखा : नहीं रावण !—शूर्पणखा नहीं हूँ मैं । अब मैं नीलमणि हूँ । मुझे नीलमणि कहो—नीलमणि, केवल नीलमणि ।

रावण : नीलमणि, बहन, क्या तुम रो रही हो ?

शूर्पणखा : नहीं, नहीं रावण !···ओह !···हाँ, मैं रो रही हूँ ।···लेकिन तुमने कैसे जान लिया ?

रावण : बहन रो रही है—यह भाई से कैसे छिपा रह सकता है ?—नीलमणि, तुम क्यों रो रही हो ? कुम्भकर्ण, नरान्तक आदि मेरे वीर राम द्वारा मारे गये । जिस पुत्र मेघनाद पर मुझे गर्व था कि वह अजेय और अमर है, उसका भी वध हो गया । और मैं पाषाण बना सुनता रहा, देखता रहा । मेरे अतिरिक्त आज लंका में कोई वीर नहीं है जो राम का सामना कर सके । इसीसे आज के युद्ध में मैं जा रहा हूँ । आज का युद्ध निर्णायक होगा । सन्ध्या तक चाहे राम रहेगा या मैं रहूँगा ।

शूर्पणखा : नहीं रावण, अब यह युद्ध समाप्त कर दो । तुम युद्ध में मत जाओ ।

रावण : क्या कहती हो नीलमणि ?

शूर्पणखा : ठीक कहती हूँ । युद्ध में मत जाओ ।

रावण : क्या पराजय स्वीकार कर लूँ ?

शूर्पणखा : राम के सम्मुख पराजय स्वीकार करना अपमान नहीं है ।

रावण : राम मेरा शत्रु है । शत्रु के सम्मुख पराजय स्वीकार करना अपमान नहीं तो क्या मान है ?

शूर्पणखा : राम विष्णु का अवतार है ।

रावण : यह तुम आज कहती हो । उस दिन को भूल गयीं क्या जब राम के संकेत से लक्ष्मण ने तुम पर वार किया था, जब उसने खर-दूषण आदि मेरे वीरों का वध किया था, जब तुमने सीता के प्रति मेरे मन में आकर्षण उत्पन्न किया था, जब तुम्हारे लिए मैंने मारीच को मृग बनने का आदेश दिया था ?

शूर्पणखा : जानती हूँ रावण; इस महानाश की जड़ में मैं हूँ । मैंने ही राम के विरुद्ध तुम्हारे मन में शत्रुता उत्पन्न की । मैंने ही सीता के प्रति तुम्हारे मन में आकर्षण भरा । मेरे कहने पर तुमने सीता का हरण किया । लेकिन तब मैंने ऐसे भयानक परिणाम की कल्पना नहीं की थी । तुम्हारे स्नेह का मैंने अनुचित लाभ उठाया । विद्युत की हत्या का प्रतिशोध मैंने लेना चाहा । नहीं जानती थी कि विश्रवा मुनि के वंश को नष्ट करने जा रही हूँ । नारी हूँ । अज्ञान में सब कुछ किया । क्षमा कर दो रावण, अपनी इस ज्ञानहीना बहन को । सब कुछ खो दिया, लेकिन तुम्हें खोना नहीं चाहती । मुझे जो चाहो, दण्ड दो, पर युद्ध में मत जाओ ।

रावण : नहीं नीलमणि, यह असम्भव है । अपने भाइयों, पुत्रों और स्नेहीजनों को खोकर मैं कैसे जी पाऊँगा ? लंकेश्वर रावण का सिर सदा ऊँचा रहा है । उसका सिर कट सकता है झुक नहीं सकता ।

शूर्पणखा : रावण, तुम राजनीति के पण्डित हो, युद्धविद्या के विशारद हो । शान्त मस्तिष्क से विचार करके निर्णय लो ।

रावण : शान्त मस्तिष्क ? जिसके विरुद्ध सारा जगत हो, जो एक सम्मिलित

षड्यन्त्र का आखेट हो, जिसके सामने वीर भाई और पुत्र के जीर्ण-शीर्ण, रक्ताक्त शव पड़े हों, जो सैन्य-जन-हीन हो, क्या उसका मस्तिष्क शान्त रह सकता है? अब तो सारा शरीर जल रहा है, अति उष्ण होकर शरीर का रक्त बाहर आने को तड़प रहा है। हाँ, राम यदि विष्णु का अवतार है तो उससे युद्ध करना लाभप्रद ही है।

शूर्पणखा : लाभप्रद कैसे ?

रावण : यदि रणस्थल में मेरी मृत्यु हुई तो पुण्यलाभ और यदि विजय हुई तो ईश्वर पर जयलाभ।

शूर्पणखा : तुम वीर हो रावण। मेरा तर्क तुम्हारे दर्प के सामने तुच्छ है। जाओ भाई, वीरधर्म को अपनाओ—इस अभागिन बहन की शुभ-कामना तुम्हारे साथ है।

[सिसकती हुई जाती है।]

रावण : बहन नीलमणि ! तुमने वर्षों पूर्व की एक घटना का स्मरण दिला दिया।—तब मैं दिग्विजय के लिए निकला था। सभी को पराजित करता मैं अचानक विष्णुलोक में जा पहुँचा और विजयघोष करता विष्णु को युद्ध के लिए ललकारने लगा। मेरी ललकार को सुन एक ऐसा व्यक्ति उपस्थित हुआ जिसके नेत्र कमलसदृश्य थे, जिसकी कान्ति मेघ के समान थी, जो अम्बुराज की तरह प्रसन्न था। मैं कुछ क्षण तक विमोहित भाव से उस छवि को देखता रहा। फिर उससे युद्धदान माँगा। उसने हँसते हुए कहा—'रावण, मैं तुमसे युद्ध करने के लिए नूतन जन्म लूंगा, तुम्हारी रणपिपासा तृप्त करूँगा।'—फिर मुस्कुराता हुआ वह लुप्त हो गया।—तब से मैं उस विष्णु की प्रतीक्षा कर रहा हूँ।—शूर्पणखा का कहना सच हो सकता है। वह राम ही विष्णु का अवतार है। शंकर से मैंने देव-दानव-किन्नर-यक्ष आदि से तो अमर रहने का वरदान माँगा। लेकिन मनुष्य को हेय समझा। मनुष्य के द्वारा मेरी मृत्यु सम्भव है। और···और···राम मनुष्य है। राम विष्णु है।—तो राम के हाथों मेरा मरण होगा ?—नहीं, ऐसा नहीं होगा। नहीं··· नहीं होगा।

[तरणीसेन का प्रवेश। रावण के चरण छूता है। रावण उसे उठाकर स्नेह से उसके सिर पर हाथ रखते हैं।]

तरणीसेन : क्या महाराज युद्ध में जा रहे हैं ?

रावण : हाँ बेटे, मैं युद्ध में जा रहा हूँ—आज युद्ध का अन्तिम दिन है। सन्ध्या तक राम रहेगा या रावण।

तरणीसेन : माँ ने मुझे आपकी सेवा में भेजा है।

रावण : तुम्हारी माँ ने ? विभीषण-पत्नी सरमा ने ?—क्यों ? क्या चाहते हो ?

तरणीसेन : अभी आपके कुल में मैं जीवित हूँ। मेरे रहते आप युद्ध में नहीं जा सकते।

रावण : पुत्र !

[रोने लगते हैं।]

तरणीसेन : महाराज, आपके नेत्रों में नीर ?—यह क्या ? लंकेश्वर म्लान-मुख हैं ? अभी आशा की किरण समाप्त नहीं हुई है।—मेरे पिता विभीषण ने शत्रु का साथ दिया तो क्या हुआ ? उनका पुत्र तरणीसेन आपकी ओर से लड़ेगा। आप मुझपर विश्वास कीजिए महाराज। मैं बालक हूँ। फिर भी आपका पुत्र हूँ, इन्द्रजीत का अनुज हूँ। आप चिन्ता न करें।

रावण : तरणीसेन, तुम मेरे हृदय को टटोलकर देखो। तुम्हारे सिवा मेरा और कौन अपना अब बचा है? युद्ध के अब तक के परिणाम से मेरा मरण भी लगभग निश्चित ही लगता है। फिर तुम्हारे सिवा और कौन मेरे वंश को चलायेगा ? नहीं तरणीसेन, मैं अपनी एकमात्र आशा के दीपक को बुझने नहीं दूंगा। तुम रणभूमि में मत जाओ।

तरणीसेन : क्या अपने पिता के राजद्रोह के कलंक को मैं अपने माथे पर लेकर जीऊँगा महाराज ?

रावण : तुम भूलते हो तरणीसेन। विभीषण ने राजद्रोह नहीं किया। उसने मुझे उचित राय दी थी। मैं ही उस पर क्रुद्ध हो उठा और उसे निष्का-

सन का दण्ड दिया। विभीषण निर्दोष है। यदि मैं उस समय उसकी राय मान लेता तो मुझे ये दुर्दिन नहीं देखने पड़ते। उसे निष्कासन-दण्ड देकर मैंने बहुत बड़ी भूल की है—यह आज समझ पाया।

तरणीसेन : सम्राट् आप मेरे पूज्य हैं। मेरी इस अन्तिम इच्छा की पूर्ति कीजिये। मैं आज आपका सेनापति बनना चाहता हूँ।

रावण : तरणीसेन ! तुम्हारे मस्तक पर जो टीका लगा है, वह सिद्ध करता है कि पिता की तरह तुम भी रामभक्त हो।—फिर रामभक्त होकर राम के शत्रु कैसे हो सकते हो ?

तरणीसेन : पिता का संस्कार है कि रामभक्त का टीका मस्तक पर लगा है, और आपका संस्कार है कि मैं राम का शत्रु हूँ। मैं इन दोनों पक्षों का निर्वाह करूँगा। देखना यह है कि राम किस पक्ष का निर्वाह करते हैं।

रावण : बेटे, फिर कहता हूँ, तुम मेरे कुलदीपक हो। युद्धभूमि में मत जाओ।

तरणीसेन : मेरे सर्वस्व आप हैं। आपके स्नेह के कारण मैं पिता के साथ नहीं गया। माँ भी लंका में ही रही। —मुझे आज का सेनापति नियुक्त कीजिये।

रावण : तरणीसेन, जब विभीषण को यह बात मालूम होगी कि मैंने तुम्हें युद्धक्षेत्र में भेजा है तो वह मुझे कभी क्षमा नहीं करेगा।

तरणीसेन : उनसे यह बात छिपी नहीं रहेगी कि मैं स्वेच्छा से युद्धभूमि में जा रहा हूँ। लंका-निवासी होने के कारण मेरा यह कर्त्तव्य है।

[नेपथ्य में पुनः रणघोष]

तरणीसेन : राम की सेना इधर ही आ रही है। राम भी अवश्य होंगे। आप महल में चले जायें।

रावण : तरणीसेन, पुत्र, मेरा आशीर्वाद तुम्हारे साथ है। जाओ, अपने कर्त्तव्य का पालन करो। कल मैं राम से युद्ध करूँगा।

[तरणीसेन रावण के चरण छूते हैं। फिर प्रस्थान। रणघोष।

दूसरी ओर रावण का प्रस्थान। रणघोष बढ़ता जाता है। राम, लक्ष्मण और विभीषण का प्रवेश।]

राम : विभीषण, कौन है सूर्य के समान कान्तिवाला यह बालक ?

विभीषण : यह बालक तरणीसेन है—आपके इस क्षुद्र दास का पुत्र। आज लंका की ओर से वही सेनापति है।

राम : तुम मेरे क्षुद्र दास नहीं, बल्कि अभिन्न मित्र हो विभीषण। तुम्हारे उच्चगुणों के कारण मैंने, रावण के जीते में ही, तुम्हें लंका का सम्राट् अभिषिक्त किया है। तुम त्रेतायुग की वह दृढ़ कड़ी हो जिससे आर्यावर्त्त और लंका की मित्रता सदा के लिए बँध गयी है।

लक्ष्मण : भैया, तरणीसेन बालक होने पर भी महावीर है। उसके मस्तक पर वैसा ही तिलक है, जैसा आपके या मेरे मस्तक पर। फिर भी वह हमारी सेना का संहार कर रहा है।

राम : विभीषण, तुम तरणीसेन को समझाओ। वह युद्धभूमि से लौट जाये। हम अपने मित्र के पुत्र पर आघात नहीं कर सकते।

विभीषण : रघुवीर, मैं लंका के हर व्यक्ति की दृष्टि में अपराधी हूँ क्योंकि रावण ने मेरा परित्याग किया है और मैं आपके पक्ष में हूँ। तरणीसेन अपने देश की ओर से युद्ध कर रहा है। इसलिए मैं उसके सामने जाने का साहस नहीं जुटा पाता।

राम : धन्य तरणीसेन ! —विभीषण, फिर तुम ही बताओ, हमें क्या करना उचित होगा ?

विभीषण : तरणीसेन का वध।

राम : विभीषण, यह तुम क्या कहते हो ? तुम तरणीसेन के पिता हो। तुम्हारे बाद वही लंका का सम्राट होगा।

विभीषण : रघुनन्दन, हम युद्धक्षेत्र में खड़े हैं जहाँ दो ही तरह के व्यक्ति हैं—मित्र अथवा शत्रु। मैं आपके पक्ष में हूँ। आपकी विजय चाहता हूँ, न्याय की मर्यादा चाहता हूँ। तरणीसेन शत्रुपक्ष का वीर है। रावण की ओर से युद्ध कर रहा है, इसलिए उसका वध आवश्यक है।

राम : यदि मैं उसका वध न करूँ तो ?

सप्तम दृश्य

स्थान—रणक्षेत्र

[युद्धवेश में सुसज्जित राम और रावण एक-दूसरे के सामने खड़े हैं। दोनों के धनुष पर बाण हैं। लक्ष्मण और हनुमान आदि कुछ दूरी पर खड़े हैं। नेपथ्य में रणघोष हो रहा है।]

रावण : राम, आज युद्ध का अन्तिम दिवस है। आज सन्ध्या तक चाहे तो राम रहेगा या रावण।

राम : अब तक के युद्ध का परिणाम तुम्हारे सामने उपस्थित है रावण। उसी से अन्तिम परिणाम की कल्पना कर सकते हो।

रावण : तुम्हारा अभिप्राय मैं समझता हूँ राम। लेकिन रावण रावण है। वह टूट सकता है, झुक नहीं सकता।

राम : रावण के वीर-दर्प को कौन नहीं जानता ?

रावण : हनुमान मेरे हाथ से बच गया। मैं उसके शौर्य की प्रशंसा करता हूँ। लेकिन लक्ष्मण तो इन्द्रजीत के बाण से मृतप्राय हो गया था। उसे हनुमान ने संजीवन बूटी देकर नवजीवन दिया। हाँ, तुम इस युद्ध में अजेय रहे।

राम : आकाश में उपस्थित उन देवताओं की ओर देखो लंकेश्वर ! वे सब किसी दिन तुम्हारी लंका में बन्दी थे। आज भी वे सब तुमसे त्रस्त हैं। —वे सब तुम्हारे मरण की कल्पना कर रहे हैं।

रावण : पहिचानता हूँ मैं उन कायर देवताओं को जो शक्तिमद में अन्धे हो

रहे थे और मैंने उन्हें दासता की बेड़ी में जकड़ा था।

राम : और देवताओं के शक्तिमद को समाप्त कर तुम स्वयं उस रोग से ग्रसित हो गये। निरंकुश शासन के द्वारा तुमने गर्हित पापकर्म किये। आज उसका दण्डविधान प्रस्तुत है।

रावण : दण्डविधान ? (अट्टहास) लंकेश्वर का दण्डविधान जब ब्रह्मा और शिव न कर पाये, तब और किसमें सामर्थ्य है ?

राम : सामर्थ्य है उस मानव में जो तुम्हारे सम्मुख युद्ध के लिए खड़ा है।

रावण : राम, तुम उसी दशरथ के पुत्र हो जिसे एक बार मैंने पराजित किया था। तब रावण की सेना अयोध्या की भूमि को पददलित कर रही थी। यह तुम्हारे जन्म के पूर्व की बात है।

राम : खेद है कि उस समय राम का जन्म नहीं हुआ था अन्यथा उसी समय राम-रावण युद्ध होता और उसी समय रावण की कथा समाप्त हो जाती।

रावण : राम, तुम भूल रहे हो कि रावण द्वारा पराजित दशरथ के पुत्र हो तुम।

राम : हाँ, उसी दशरथ का पुत्र हूँ मैं जिसने वीर शम्बरासुर का वध किया था जो केवल तुम्हारा सम्बन्धी ही नहीं, तुम्हारी तरह आततायी भी था।

रावण : दशरथनन्दन, आकाश के देवगण और पृथ्वी पर खड़े तुम्हारे ये वीर हम दोनों का अन्तिम युद्ध देखेंगे। मेरे सभी आयुध का तुमने प्रत्युत्तर दिया। मैं सैन्य-जन-हीन हूँ। यदि शक्ति है तो करो मेरा वध।

राम : रावण, मुझे तुम पर दया आती है। तुम्हारे कारण आज लंका वीर-विहीन हो गयी। एक अवसर तुम्हें और देता हूँ। यदि चाहो तो आत्म-समर्पण करो, उदार भाव से न्यायोचित शासन करने का वचन दो। मैं तुम्हें क्षमादान दूँगा।

रावण : (अट्टहास) क्षमादान ?—आश्चर्य है कि राम अपने वचन से विमुख हो रहा है।

राम : कैसा वचन ?

रावण : तुमने मेरे जीवित रहते, सागर के पुनीत जल से, मेरे छोटे भाई

विभीषण का राज्याभिषेक किया है। लंकेश्वर कहकर उसका स्नेहसिक्त आलिंगन किया है। यदि मैं आत्मसमर्पण कर दूँ और तुम मुझे क्षमादान भी दे दो तो फिर विभीषण का क्या होगा ? तुम्हें मिथ्याभाषी और स्वार्थी कहकर क्या वह तुम्हारा तिरस्कार नहीं करेगा ?

राम : विभीषण मेरा भक्त है, लेकिन उसके मन में तुम्हारे प्रति असीम सम्मान का भाव है। ऐसा उसने कई बार व्यक्त किया है। वह स्वेच्छा से, राजपद को, तुम्हारे लिए छोड़ देगा।

रावण : रावण किसी के दान पर जीवित नहीं रहेगा राम। तुम मेरे शत्रु हो और रावण शत्रु से क्षमादान नहीं, युद्धदान की आशा रखता है।

राम : तो फिर वही हो।—चलाओ वाण। मैं सामने हूँ।

रावण : अन्तिम वाण। तो यह लो।

[वाण चलाते हैं। लक्ष्यभंग हो जाता है। फिर चलाते हैं। फिर लक्ष्यभंग हो जाता है।]

रावण : यह क्या ? क्या मेरी समस्त रणविद्या नष्ट हो गयी ? क्या-क्या नहीं। राम, मेरी ओर क्यों देखते हो ?—वाण चलाओ वीर।

राम : रावण ! सावधान—मैं ब्रह्मास्त्र का प्रयोग करता हूँ। सम्भव हो तो इसका प्रतिकार करो। सृष्टि ! सावधान हो जाओ।—आकाश के देवगण ! नेत्र बन्द कर लो।

[विजली की चमक। मेघ-गर्जन। अन्धकार-प्रकाश-अन्धकार-प्रकाश। राम मन्त्र पढ़कर वाण छोड़ते हैं। वाण रावण की छाती में लगता है। वे पृथ्वी पर गिरते हैं।]

रावण : आह ! आह ! राम, घोषणा कर दो। रावण पृथ्वी पर गिर पड़ा। युद्ध बन्द कर दो। आह ! राम ! राम !

राम : हनुमान, युद्ध वन्द करने की घोषणा कर दो। रावण का पतन हो गया।

[हनुमान का प्रस्थान]

रावण : राम !—तुम समझते हो कि राम-रावण का युद्ध समाप्त हो गया। नहीं वीर, यह युद्ध कभी समाप्त नहीं होगा। हमारे-तुम्हारे बीच का युद्ध तो तब से चल रहा है, जब से सृष्टि का आरम्भ हुआ। तुमने न्याय का प्रतिनिधित्व किया और मैंने अन्याय का। तुमने सत्य का और मैंने असत्य का। सतयुग में भी हम दोनों लड़े थे। यह त्रेता है। इस युग में भी हम दोनों का युद्ध हुआ। मैं फिर जन्म लूँगा। द्वापर में फिर युद्ध होगा। सम्भव है, मैं पुनः पराजित हो जाऊँ। लेकिन मेरे रक्त में पुनर्जन्म का बीज वर्त्तमान है। वह नष्ट नहीं हो सकता। हमारा निर्णायक युद्ध होगा कलियुग में। हाँ, कलियुग में, जब मैं कोटि-कोटि व्यक्ति में वास करूँगा, हर मनुष्य में रावण रहेगा। उसकी माया को समझना किसी के लिए भी असम्भव होगा। देखना है कि राम उस समय किस रूप में अवतरित होता है। कोटि-कोटि रावण का वध एक राम से असम्भव होगा। कलियुग में तुम्हारे बल की असली परीक्षा होगी।

राम : रावण, तुम महान् पण्डित हो। तुम्हारी बुद्धि विलक्षण है। जानता हूँ, त्रेता का रावण अन्तिम रावण नहीं है। द्वापर में भी मुझे तुम्हारे वध के लिए आना पड़ेगा और सुदूर भविष्य की तिमिरावृत्त चादर को चीर कर मैं देख रहा हूँ कि कलियुग में कोटि-कोटि व्यक्ति में, विभिन्न रूपों में, तुम वास करोगे। रक्तबीज की भाँति तुम्हारी संख्या में वृद्धि होती जायेगी, तुम्हें पहिचानना भी कठिन होगा। फिर भी राम आयेगा। —किस रूप में—यह समय बतायेगा।

रावण : आह ! यन्त्रणा हो रही है। सामने खड़ी है मृत्यु। वह अभी भी मुझसे भय खा रही है। सुन्दरी ! निकट आओ ! निकट आओ !

[कष्ट से तड़पते हैं।]

राम : (एकान्त में लक्ष्मण को संकेत से बुलाते हैं) लक्ष्मण, रावण मेरा शत्रु होने पर भी महान् पण्डित है। अब वह मृत्यु का ग्रास बनेगा। क्यों न उससे राजनीति का उपदेश ग्रहण करें ?

लक्ष्मण : भैया, क्या कहते हैं आप ? जिसने जीवन-भर पाप अर्जित किया, वह आपको राजनीति का उपदेश क्या देगा ?

राम : लक्ष्मण, भाई, याद करो—किस संकट से हम प्रारम्भ से जूझते आये हैं। बचपन हँसने-खेलने में बीता, किशोरावस्था में मुनि विश्वामित्र के साथ वनों में घूमना पड़ा, तरुणाई में राजमुकुट न मिलकर पिता-माता की ओर से चौदह वर्ष का वनवास मिला। वनवास की अवधि पूरी हो रही है। अयोध्या का सिंहासन हमारी प्रतीक्षा कर रहा है। लेकिन हम शासन कैसे करेंगे जब हमें राजनीति की शिक्षा पाने का अवसर ही नहीं मिला ?···रावण आततायी होने पर भी राजनीति का प्रकाण्ड पण्डित है। देखो, वह संज्ञाहीन हो गया है। मरा नहीं है। जाओ, उससे उपदेश ग्रहण करो और उस उपदेश से मुझे भी लाभान्वित करो।—संकोच छोड़ दो, शत्रुता का भाव त्याग दो। उसके निकट जाओ।

लक्ष्मण : आपके आदेशानुसार मैं रावण से निवेदन करता हूँ।

[रावण के पास जाकर उनके सिर के पास खड़े हो जाते हैं।]

लक्ष्मण : लंकेश !

रावण : (अर्द्ध संज्ञाहीन) कौन ?

लक्ष्मण : मैं श्री हूँ श्रीराम का अनुज—लक्ष्मण। श्रीराम ने मुझे भेजा है। आपसे प्रार्थना है कि आप मुझे राजनीति का उपदेश दें।

रावण : (कुछ होश में आकर, हँसकर) मूर्ख ! राम ने तुम्हें भेजा है ? तुम राजनीति का उपदेश ग्रहण करना चाहते हो ?—सिर के पास खड़े होकर तुम कभी कुछ नहीं सीख सकते।—यदि राम की इच्छा है तो वह क्यों नहीं आता ?—लौट जाओ लक्ष्मण।

[लक्ष्मण अपमानित अनुभव करते हुए राम के पास लौट आते हैं।]

लक्ष्मण : भैया, आपने सुन लिया न उस दुष्ट का उत्तर ?

राम : (हँसकर) लक्ष्मण, रावण ने उचित कहा है। ज्ञान प्राप्ति के लिए गुरु के चरण के पास जाना चाहिए। चलो, मैं चलता हूँ।

[राम आकर रावण के पैरों के पास खड़े होते हैं। फिर चरण छूकर प्रणाम करते हैं।]

रावण : कौन ?

राम : आचार्य, मैं हूँ—आपका शिष्य राम।

रावण : राम ? मेरा शिष्य ?—नहीं-नहीं, यह स्वप्न है।

राम : नहीं, यह सत्य है।—अपने अपराध के लिए क्षमायाचना करता हूँ।

रावण : राम, अभी-अभी मैंने एक स्वप्न देखा—वर्षों पुराना स्वप्न।—तब मैं यौवन के गर्म उच्छवास से भरा हुआ विष्णु के पास गया था। विष्णु ने कहा था—'तुमसे युद्ध करने के लिए मैं नूतन जन्म लूँगा।'—श्यामल शरीर ! कमलनयन ! मनोहारी छवि !—तब से मैं उसकी प्रतीक्षा में हूँ। आज वही मूर्त्ति मेरे सामने है। राम, तुम-तुम—विष्णु हो। सृष्टि के आदिकाल से मुझे छलते आ रहे हो।—कब तक छलोगे ?—कब तक छलोगे ?

[रो पड़ते हैं।]

राम : समुद्र के तट पर आप मेरे आचार्य बने थे। मेरी विजय के लिए आपने यज्ञ कराया था। अपने आशीर्वाद को पूरा करने के लिए आपने प्राण दिये। आपके इस मूक त्याग को मैं जानता हूँ। अन्तिम समय में एक कृपा और कीजिये।—हमें राजनीति का उपदेश दीजिये।

रावण : (हँसकर) विष्णु के अवतार राम ! यह कैसा व्यंग है ? कौन-सी ऐसी विद्या है जिसे तुम नहीं जानते ?—अब और मेरी परीक्षा लो।

राम : आपका शिष्य हाथ जोड़ता है।

रावण : समय कम है। जो भी कह सकूँ, उसे सुनो और याद रखो। जब स्वर्गलोक पर मैंने जयध्वजा फहरायी तो सोचा कि एक ऐसा सुगम मार्ग बनाया जाये कि सभी लोग सरलता से वहाँ पहुँच सकें। मेरे लिए वह कार्य कठिन न था, लेकिन फिर विचार आया कि जीवन बड़ा है। इसे कर लूँगा। सोचता ही रहा और आज मृत्यु का ग्रास बन रहा हूँ। उस कार्य को पूरा न कर सका। फिर शूर्पणखा ने मुझे उत्तेजित किया। मैंने सीता का हरण किया, तुमसे अकारण युद्ध मोल लिया और आज उसका परिणाम सामने है।

राम : आप अपना अभिप्राय स्पष्ट करें गुरुदेव !

रावण : शुभकार्य शीघ्र करना चाहिए और और अशुभकार्य में विलम्ब करना चाहिए।—यदि मैं स्वर्ग का मार्ग बना देता तो युग-युगान्तर तक लोग मेरी पूजा करते, और यदि शूर्पणखा के अशुभकार्य पर मैं विचार करता तो कदाचित् लंका का सर्वनाश न होता, मेरा आज मरण नहीं होता।

राम : आप उचित कहते हैं। मैं सन्तुष्ट हूँ। आपका कृतज्ञ हूँ।

रावण : सीता पवित्र है। अशोकवाटिका से उसे शीघ्र बुला लो।—राम, एक बार—एक बार—मेरे मस्तक पर अपना सुकोमल हाथ रखो। तुम्हारे विषैले वाण की यन्त्रणा से मैं दग्ध हो रहा हूँ।—एक बार—एक बार—

[राम अपना हाथ रावण के मस्तक पर रखते हैं।]

रावण : [धीमे स्वर में शिवताण्डवस्तोत्र का पाठ करने लगते हैं। स्वर मन्द होता जाता है] अमृतेश ! क्षमा !—हे राम ! क्षमा !—क्षमा !

[मृत्यु। राम खड़े हो जाते हैं। उनके मुख पर प्रकाश।]

०००

मगध कलाकार प्रकाशन
106, श्रीकृष्ण नगर, पटना-800001